कलिकाल सर्वज्ञ कल्प जंगमयुग प्रधान
प्रतिक्षणानुस्मरणीय-परमयोगी परमज्ञानी,

परोपकारी पूज्यपाद गुरुदेव
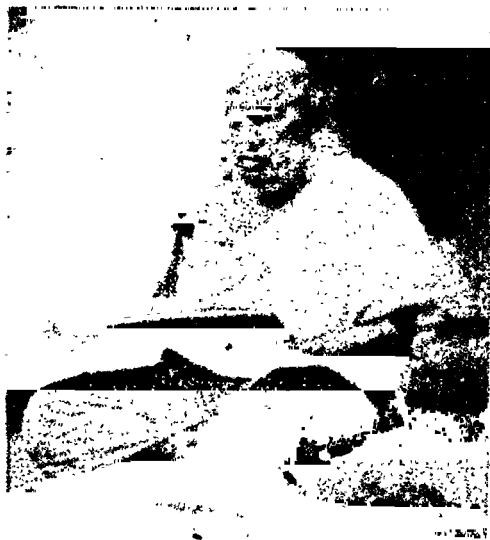
श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी म०

समर्पण....!
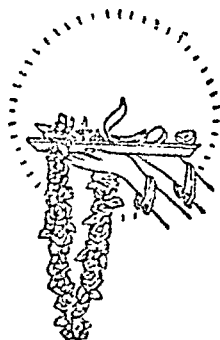
पूज्यपाद प्रशान्त मूर्ति

कवि रत्न

आचार्य देव श्रीमद्विजय विद्याचन्द्र सूरीश्वरजी

महाराज सा. को

जिन्होंने मुझे सदा उत्साहप्रद प्रेरणा दी है।

— जयन्त विजय 'मधुकर'

पूज्यपाद कवि हृदय शान्तमूर्ति

आचार्यदेव श्रीमद्विजयविद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

कुसुमांजलि !

जीवन एक प्रश्न है,

जीवन स्वरूप भी प्रश्न है,

और

जीवन व्यवहार का व्यवस्थित संचलन भी एक प्रश्न है।

एक नहीं अनेक प्रश्न हैं इसी प्रकार के व्यक्ति के जीवन में जिनका समाधान खोजने के लिए व्यक्ति सर्वतः सर्व रीत्या, परिश्रम रत रहता है।

जीवन क्रम समाप्ति को सम्प्राप्त हो जाता है परंतु समाधान का स्वरूप प्रतीत नहीं होता।

जीवन साधना के लिये आधार है, सिद्धि के लिये उपक्रम एवं उत्क्रम का प्रारंभ है और बाह्याभ्यन्तर शुद्धि के लिये परमश्रेष्ठ साधन है।

भिन्न भिन्न दिशा की साधना करते हुए व्यक्ति विविध प्रकार की प्रवृत्तियों में अपने आप को व्यस्त रखता हुआ विविध रूपों में विभक्त कर देता है, परिणामतः स्वरूप से स्वयं को दूर कर के बहुरूपी की श्रेणि पर आरूढ़ कर देता है।

विभिन्नता में भी एकता ही प्रश्न का समाधान है। एतदर्थ आवश्यक है द्रव्य भावात्मक वैषम्य का अन्त करके अविसम की अनन्तता को प्रकट कर लें।

साधना जीव मात्र का लक्ष्य होता है,

साधना बिन्दु की उपलब्धि के लिये ही प्रत्येक पुरुषार्थरत रहते हैं। किन्तु—

दिशा परिवर्तित नहीं।

पुरुषार्थ की दिशा की ओर दृष्टि डालना चाहिये, विहंगम दृष्टि से देखना चाहिये कि हमारा परिश्रम क्लान्त एवं श्रान्त वर्द्धक है या क्लान्त निवर्तक है ? अपने आप को आन्तर दृष्टि को दीर्घ बनाकर टटोलने का भी पूर्ण महत्त्व है। तद् हेतु चाहिये ज्ञान का निर्मल दर्पण।

हाँ, तो साधना में निरत हो जीवन में काल निर्गमन करना चाहिये। यही जीवन को पुष्पित, पल्लवित एवं फलित करने का एक मात्र सरल उपाय है।

साधना की दिशा का सम्यक् परिचय पाने के लिये ही जीवन की बहुमूल्य क्षणों का प्रतिगमन होता है। उस हेतु पुरुषार्थ परम आवश्यक है। साधनभूत गुणों का जीवन में अंगीकरण भी जरूरी है और क्रियात्मक प्रयोग ही नहीं विनियोग भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है ?

प्रस्तुत 'जीवन साधना' अपने आप को लेकर उपस्थित है, जीवन परिष्कार में साधना का सम्बल दिखाने का लक्ष्य है इसका।

[illegible]

[illegible]

प्रवचनकार

मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी महाराज 'मधुकर'

अपनी ओर से

चिरपरिचित मधुर रसीला गन्ना ! सब जानते हैं कि कुछ खारेपन का मिश्रण होने से उसकी पर्व ग्रन्थियां नीरस होती हैं—वेस्वाद; फिर भी बीच-बीच में जो मधुर रस पाया जाता है, उसका आधार वे पर्व ग्रन्थियां ही तो हैं ?

जैन धर्म के पर्वों में भी साहसपूर्ण तप-त्याग के मिश्रण से जो नीरसता दिखाई देती है, जीवन की मध्यावधि में पाई जाने वाली सरसता का वही एक मात्र आधार है !

फिर ऊपर से ज्यों-ज्यों हम नीचे की ओर बढ़ते हैं, गन्ने के रस की मधुरता बढ़ती जाती है. इससे प्रकट होता है कि पर्वों को ऊपर-ऊपर से दिखावे के तौर पर मनाने वालों को उतना आनन्द नहीं आ सकता, जितना भीतर से (अन्तःकरण से) मनाने वालों को आता है !

पर्युषण भी एक महा पर्व है उसमें पाई जाने वाली तप-त्याग की नीरसता जीवन को सरस बनाने वाली है. साथ ही यह भी सूर्यप्रकाश की तरह अत्यन्त स्पष्ट है कि उसे हृदय की जितनी गहराई से मनाया जायगा, जीवन का माधुर्य क्रमशः उतना ही बढेगा, बढ़ता जायगा !

गहराई से पर्व मनाने के लिए जिस बोध की आवश्यकता है, वह प्राप्त होता है—निःस्पृह सन्तों के प्रवचनों से.

इस वर्ष [सन् १९७० ई. में] पं. मुनि श्री जयन्त विजयजी म. सा. "मधुकर" का चातुर्मास पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र

कहने की आवश्यकता नहीं कि बिना किसी शास्त्र या ग्रन्थ की सहायता लिये मौलिक रूप से अपनी विद्वत्ता, अध्ययन और चिन्तन के बल पर दिये गये इन पर्युषणमहापर्व के आठों प्रवचनों से सभी श्रोता अत्यन्त प्रभावित हुए.

प्रवचनों के उस पवित्र अमृत-प्रवाह से और कोई भी अध्यात्म प्रेमी क्यों वंचित रहे? साथ ही जो लोग उसका लाभ पा चुके हैं, वे भी बार-बार पढ़कर अधिक से अधिक भावों को हृदयंगम कर सकें—इस दृष्टि से उन प्रवचनों को सुव्यवस्थित रूप में सम्पादित यह संकलन आपके कर कमलों में प्रस्तुत है! कैसा है? इसका निर्णय आप स्वयं ही कीजिये और आनन्द पाइये!

—सत्यदास

कहने की आवश्यकता नहीं कि बिना किसी शास्त्र या ग्रन्थ की सहायता लिये मौखिक रूप से अपनी विद्वत्ता, अध्ययन और चिन्तन के बल पर दिये गये इन पर्युषणमहापर्व के आठों प्रवचनों से सभी श्रोता अत्यन्त प्रभावित हुए.

प्रवचनों के उस पवित्र अमृत-प्रवाह से और कोई भी अध्यात्म प्रेमी क्यों वंचित रहे? साथ ही जो लोग उसका लाभ पा चुके हैं, वे भी बार-बार पढ़कर अधिक से अधिक भावों को हृदयंगम कर सकें—इस दृष्टि से उन प्रवचनों को सुव्यवस्थित रूप में सम्पादित यह संकलन आपके कर कमलों में प्रस्तुत है ! कैसा है ? इसका निर्णय आप स्वयं ही कीजिये और आनन्द पाइये !

—सत्यदास

कर्त्तव्य प्रेरणा

धर्मप्रेमियो !

आज से महापर्व पर्युषण प्रारम्भ हो रहा है. यह एक प्रकार की आध्यात्मिक दीवाली है. जिस तरह दीवाली पर व्यापारी लोग वर्षभर के आय-व्यय का पूरा हिसाब करते हैं, उसी तरह पर्युषण पर्वाधिराज के आने पर धर्म प्रेमी लोग वर्षभर के पुण्य पाप का पूरा हिसाब करते हैं.

आठ दिनों तक एकान्त में शांत चित्त से यह सोचा जाता है कि पिछले बारह महीनों में कहां किसके प्रति कब कितनी माया, ममता, ईर्ष्या एवं दुर्भावना का व्यवहार किया गया ? कहां कितना सेवा कार्य परोपकार किया गया ? यदि पाप की अपेक्षा पुण्य की अर्थात् बुरे कामों की अपेक्षा अच्छे कार्यों की मात्रा अधिक है तो हिसाब ठीक है, परन्तु यदि इसके विपरीत पाप की मात्रा अधिक है समझ लिया जाता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से हमारा दिवाला आउट हो गया है. हम 'मानव' से दानव बन गये हैं या पशु बन गये हैं.

'मानव' में दो शब्द हैं—'मा' (नहीं) और 'नव' (नौ). इसका मतलब यह निकलता है कि जिसमें नौ दोष न हों, वही मानव है. वे नौ दोष हैं:—क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, ममता, ईर्ष्या और वासना.

जिसका राग प्रशस्त है अर्थात् सुदेव सुगुरु एवं सुधर्म के अनुरक्त है—जिसके परिणाम (विचार) अनुकंपा से प्रेरित हैं और जिसके मन में कालुष्य (दुर्भाव) नहीं है, उस जीव में पुण्य का आश्रव होता है.

प्रमाद से पूर्ण आचरण, कालुष्य, विषयलोलुपता, दूसरों को दिया गया कष्ट और परनिन्दा—इनमें पाप का आश्रव होता है.

जिसमें सब द्रव्यों के प्रति न राग होता है, न द्वेष, न मोह—ऐसे सुखदुःख समभावी मुनि की आत्मा में शुभा-शुभ का (पुण्य-पाप का) आश्रव नहीं होता.

अच्छे कार्यों का परिणाम (फल) अच्छा और बुरे कार्यों का फल बुरा होगा ही:—

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णाफला भवन्ति
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णाफला भवन्ति

—औपपातिक सूत्र ५६

इसी प्रकार अच्छे कार्यों का फल इस भव में भी मिलता है और परभव में भी:—

इहलोगे सुचिण्णा कम्मा,
इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ।
परलोगे सुचिण्णा कम्मा,
परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ॥

—स्थानांग सूत्र ४१२

मनुष्यों के सभी अच्छे कार्य सफल (फल वाले) होते हैं. इसलिये पुण्य का फल भोगना भी आत्मा के लिये अनिवार्य है.

फल भोगने के लिए संसार में जन्म लेना पड़ता है; इसलिए पाप की तरह पुण्य भी मोक्ष मार्ग में बाधक है :—

पुन्नं मोक्खगमणविग्घयं हवइ ॥

—निशीथचूर्णि भाष्य ३३२९

पुण्य और पाप से जो भी जैसा भी कर्मबन्ध होता है, उसे भविष्य में भोगना पड़ता है:—

"जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं,
तमेव आगच्छति संपराए ॥"

संसार के समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मों से ही कष्ट पा रहे हैं परेशान हो रहे हैं:—

सकम्मुण विप्परियासुवेइ ॥

—सूत्रकृतांग १/७/११

जो कर्मों से डरते रहते हैं, उनके कर्म बढ़ते रहते हैं:—

कर्मभीताः कर्माण्येव वर्द्धयन्ति ॥

—सूत्रकृतांगचूर्णि १/१२

आखिर कर्म जड़ है और आत्मा अजड़ है—चेतन है. यदि हम आत्मा के स्वरूप को पहिचान लें—उसके स्वभाव को समझ लें तो कर्म हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते; इसलिये कर्म से डरने की आवश्यकता नहीं है.

यदि हम नये कर्म न करें तो पुराने पाप कर्म धीरे-धीरे क्षीण होने लगेंगे:—

तुट्टंति पावकम्माइं,
नव कम्ममकुव्वओ ॥

—सूत्रकृतांग १।१५/६

कर्मबन्ध के चार प्रकार होते हैं:—

(क) स्पृष्ट कर्म:—जिस प्रकार कपड़े पर रेत पड़ जाय तो कपड़ा उठाते ही वह नीचे गिर पड़ती है; उसी प्रकार जो कर्म सम्यग्ज्ञान से ही झड़ जाते हैं—आत्मा का विवेक जागृत होते ही दूर हो जाते हैं; वे स्पृष्ट कर्म हैं.

(ख) बद्धकर्म:—जिस प्रकार गिली मिट्टी का दाग मिटाने के लिये कपड़े को जल से धोना पड़ता है. इसी प्रकार जिन कर्मों को धोने के लिये सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन का जल भी आवश्यक होता है, वे बद्धकर्म हैं.

(ग) निधत्त कर्म:—यदि कपड़े पर घी या तेल का दाग लग जाय तो उसे मिटाने के लिये जल के साथ साबुन या सोड़े की भी जरूरत होती है; उसी प्रकार जिन कर्मों को हटाने के लिये सम्यग्ज्ञान और समग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र की भी आवश्यकता होती है, वे निधत्त-कर्म हैं. ये आत्मा से अलग तो किये जा सकते हैं; परन्तु कुछ समय के बाद-कुछ परिश्रम के बाद—कुछ तपस्या के बाद.

(घ) निकाचितकर्म:—कपड़े पर लगे हुए किट्ट के दाग की तरह जिनका बन्ध अत्यन्त प्रबल होता है, वे निकाचित कर्म कहलाते हैं. जब तक इनका फल भोग नहीं लिया जाता, तब तक ये नष्ट नहीं होते. चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के पाँवों पर खीर पकाई गई—कानों में कीले ठोके गये—स्कन्दक मुनि को उनके पाँच सौ शिष्यों के साथ घाणी में पेला गया—राम सीता और लक्ष्मण को चौदह वर्ष तक जंगल में रहना पड़ा ! जैन धर्म की स्पष्ट मान्यता है कि यह सब उनके निकाचित कर्मों का फल था, जिसे भोगना अनिवार्य है.

साधु या मुनि की बात और है; क्योंकि वह:—

"संजमेणं तव सा अप्पाणं भावेमणे विहरइ"

[संयम और तप से आत्मा को भावित या पवित्र बनाता हुआ विहार करता है.]

परन्तु जहाँ तक गृहस्थ का सवाल है, उसे अधिक से अधिक शुभ कार्य या पुण्याचरण करना चाहिये—दान करना चाहिये-शास्त्रीय वचन सुनने चाहियें—न्याय पूर्वक धनार्जन करना चाहिये और घमण्ड से दूर रह कर नम्रता धारण करनी चाहिये !

अन्यथा उसकी हालत कैसी होगी ? जीवन-भर तो वह दूसरों से निन्दा पायेगा ही, पर मरने के बाद उसके शरीर से सियार भी घृणा करेगा; जैसा कि अपने एक श्लोक द्वारा किसी कवि ने व्यक्त किया है:—

"नहीं-नहीं, इसने हमेशा उत्तम शास्त्रों से द्रोह किया है. शास्त्रीय वाणी इसने कभी नहीं सुनी; इसलिये इसके कान खाने योग्य नहीं हैं."

"आँखें खाने में क्या हर्ज है ?"

"इसकी आँखें साधुओं के दर्शन से पवित्र नहीं हुईं."

"तो पांव ही खा लेने दीजिये."

"नहीं; इसके पांव भी अपवित्र हैं, क्योंकि इनसे कभी तीर्थ यात्रा नहीं की."

"जाने दीजिये पांवों को. पेट खाने मे क्या आपत्ति ?"

"बहुत बड़ी आपत्ति है—जीवनभर इसने दूसरों को धोखा दिया है—ठगा है— उनके प्रति अन्याय किया है और इस प्रकार जो पैसा कमाया है, वही इसने अपने पेट में डाला है. अर्थात् उसी अपवित्र धन से अपना पेट भरा है; इसलिये पेट भी खाने योग्य नहीं है."

"तो फिर इसके शरीर में केवल सिर ही बच रहता है. यदि आप अनुज्ञा दें तो उसी को खाकर मैं अपनी थोड़ी-बहुत क्षुधा तृप्त कर लूं."

"नहीं—नहीं; सियार ! इसने अपना सिर घमंड से सदा ऊंचा ही रखा है. अपने को इसने सबसे बड़ा माना है. सद्‌गुणी सज्जनों के सामने इसने कभी अपना सिर नहीं झुकाया; इसलिये इसका सिर भी सर्वथा अपवित्र है—त्याज्य है."

यह सुनकर सियार भूखे पेट ही वहाँ से चला जाता है.

परन्तु श्रुतज्ञान टिकता तभी है, जब उसका बार-बार ध्ययन किया जाय:—

शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय
भूप सुसेवित पुनि पुनि लेखिय
राखिय जदपि सदा उर माहीं
जुवती शास्त्र नृपति बस नाहीं

—रामचरितमानस

अभ्यास के बिना विद्या उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस कार लहसुन से केसर की सुगन्ध:—

"केसर विण से लसुण निवासे
विद्या विणसे विण अभ्यासे"

—जिन

हैं; इसलिये जिसके पास यह शास्त्र रूपी आँख नहीं है, वह अन्धा ही है:—

अनेक संशयोच्छेदि,
परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं,
यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥

—हितोपदेशः

शास्त्रीय ज्ञान के बाँटने वाले उपदेशक भी दो तरह के होते हैं—जगत् की बात कहने वाले. और जीव की बात कहने वाले दूसरे शब्दों में हम उन्हें लौकिक और लोकोत्तर कह सकते हैं। लौकिक स्वर्ग प्राप्ति का उपदेश देते हैं और लोकोत्तर मोक्ष प्राप्ति का उपाय सुझाते हैं पहले प्रकार के लोग पुण्यबन्ध का मार्ग बताते हैं; परन्तु दूसरे लोग पुण्य के माध्यम से अथवा सीधे ही तपसंयम के माध्यम से पुण्य और पाप दोनों को समाप्त कर जगत्ताप से सदा के लिए मुक्त होने का मार्ग बताते हैं. लौकिक दर्शन में सारे जगत् का कर्त्ता, पालक और संहारक भगवान ही माना जाता है; किन्तु अलौकिक दर्शन में आत्मा को ही अपने सुख–दुःख का कर्त्ता और भोक्ता माना जाता है:—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुहाण य सुहाण य ॥"

—उत्तराध्ययन २०/३७

ये सारी बातें भी शास्त्रीय उपदेश सुनने या स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करने ही मालूम होती है. शास्त्रीय ज्ञान एक ऐसा धन

शास्त्रों का जो नियमित पारायण करते हैं, उन्हें अर्थ समझकर ही ऐसा करना चाहिये. "राम-राम" का उच्चारण तो एक तोता भी कर लेता है; किन्तु वह "जप" नहीं कहलाता. क्योंकि तोता यह नहीं जानता कि राम कौन थे और उन्होंने क्या क्या कार्य किये थे ?

अर्थ समझकर किये जाने वाला उच्चारण ही स्मरण है, जो आचरण का प्रेरक बनकर जीवन का कल्याण करता है. एक कथा द्वारा यह बात और स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है:—

किसी जंगल में ऋषियों का एक आश्रम था. एक महर्षि थे जो ऋषियों को पढ़ाया करते थे.

आश्रम के बाहर ही कुछ दूरी पर एक विशाल वटवृक्ष था. उस पर सैकड़ों तोते विश्राम किया करते थे. एक शिकारी प्रति दिन जाल बिछा कर कुछ तोतों को फँसा लिया करता था. इससे धीरे-धीरे तोतों की संख्या घटने लगी. एक शिष्य को यह देख कर दया आ गई. उसने सोचा कि जैसे हम लोग गुरुदेव के पास पढ़ते हैं, वैसे ही इन तोतों को भी पढ़ा दिया जाय तो ये जाल में नहीं फँसेंगे.

उसने अपना विचार गुरुदेव के सामने प्रकट किया और तोतों को शिक्षित बनाने का प्रयास करने की आज्ञा माँगी. गुरुजी ने उस प्रयास की व्यर्थता समझाने की कोशिश की; परन्तु शिष्य का प्रबल हठ देखकर उसे वैसा करने की अनुमती दे दी.

शिष्य अपना प्रयोग करने के लिये उस पेड़ के पास

ही किसी चट्टान पर अपना आसन बिछाकर बैठ गया. कुछ तोते उसके आस-पास आकर बैठ गये. उसने उन्हें सिखाया:—

"शिकारी आये, जाल बिछाये,
दाने डाले ! नहीं फंसाना !

वे तोते इन चारों वाक्यों का उच्चारण सिख गये. धीरे धीरे पेड़ पर रहने वाले सभी तोते इनका उच्चारण करने में कुशल हो गये.

शिष्य अपने मन में प्रसन्न होता हुआ आश्रम में लौट गया. उसने गुरुदेव से कहा:—"आज मैंने तोतों को चार वाक्य सिखा दिये हैं; इसलिये वे अपनी आत्म रक्षा कर लेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है."

"तुम्हारा विश्वास कितना सच्चा है—इसकी परीक्षा कल ही प्रातःकाल हो जायगी, जब प्रतिदिन की तरह कल भी शिकारी आकर अपना कार्य करेगा." गुरुदेव ने मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरते हुए कहा.

दूसरे दिन प्रातःकाल आवश्यक दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के बाद महर्षि सहित ऋषि लोग आश्रम के बाहर उस स्थान पर आकर बैठ गये, जहाँ से उस वटवृक्ष का पूरा दृश्य देखा जा सकता था.

अपने निश्चित समय पर शिकारी आया. उसने दाने डाले, जाल बिछाया और फिर वह एक झाड़ी में छिपकर खड़ा हो गया. तोते यह सब देखकर एक साथ गाने लगे—"शिकारी आये, जाल बिछाये, दाने डाले, नहीं फंसाना." कोई तोता

उड़कर जाल के पास नहीं आया. शिष्य ने गर्व से सीना फुला-
कर सबसे कहा—"देखिये, आज शिकारी की दाल नहीं गल
रही है. आज उसे खाली हाथ घर लौटना पड़ेगा. तोते आत्म-
रक्षा की बात सीख गये हैं. अब भला उन्हें कोई कैसे फंसा
सकता है ?"

गुरुदेव ने कहा—"अधीर मत बनो. अभी कुछ देर और
प्रतीक्षा करो. जब तक शिकारी लौट न जाय तब तक तुम्हारे
विश्वास और प्रयास की पूरी परीक्षा नहीं हो सकती।

समय बीता. एक तोते का मन दानों की ओर ललचाया,
झुण्ड का साथ छोड़कर वह जाल पर जा बैठा. फिर क्रमशः
पाँच-पाँच, दस-दस तोते इसी प्रकार उड़-उड़ कर दाने चुगने के
लिए जाल के पास पहुँचने लगे. शिकारी ने जाल समेटी, प्रायः
सभी तोते उसमें फंस गये थे; किन्तु उस जाल में फंसे-फंसे भी
वे अपना गा रहे थे—

"शिकारी आये, जाल बिछाये, दाने डाले, नहीं फंसाना.'

शिष्य का विश्वास झूठा साबित हुआ, तोते आखिर तोते
ही होते हैं, वे मनुष्यों की भाषा के शब्दों का अर्थ नहीं समझ
सकते. गुरुदेव ने समझाया कि जो लोग अर्थ समझे बिना सूत्रों
का पाठ करते हैं, वे इन तोतों की ही तरह संसार रूपी जाल में
फंसते रहते हैं.

जैन शास्त्रों में सूत्रधर की अपेक्षा अर्थधर को अधिक प्रमा-
णिक माना गया है; क्योंकि अर्थ तीर्थङ्करों के मुख से प्रकट
होता है:—

अहिंसा धर्म

सज्जनों !

पर्युषण पर्व का आज तीसरा दिन है. जैनों के सभी पर्व त्याग के प्रेरक होते हैं. अन्य धर्मों की तरह खाने-पीने मौज उड़ाने का या भोग का प्रेरक एक भी पर्व जैन धर्म में नहीं मिलेगा.

त्याग भी अनेक प्रकार के होते हैं. सबसे पहले हिंसा के त्याग पर बल दिया गया हैं. हिंसा के प्रयोजन भी अनेक होते हैं. कुछ लोग अर्थ (धन) के लिए हिंसा करते हैं, कुछ लोग अर्थलोभ के बिना भी निरर्थक हिंसा करते रहते हैं. इसी प्रकार कुछ लोग क्रोध. लोभ (स्वाद लोलुपता) और मोह के कारण हिंसा में प्रवृत होते हैं:—

अट्ठा हणंति, अणट्ठा हणंति, कुद्धा
हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति ।।

—प्रश्नव्याकरण १/१

प्राणवध किसी भी कारण से किया जाय, वह होता है—प्रचण्ड, रुद्र, क्षुद्र (तुच्छ), अनार्य (अशिष्ट या असभ्य), निर्घृण निष्करुण), क्रूर और अत्यन्त भयंकर !

"पाणवहो चंडो, रुद्दो, खुद्द, अणारियो, निग्घिणो, निसंसो' महब्भयो ।।"

क्योंकि सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।:—

> सव्वे जीवावि इच्छंति,
> जीविउं न मरिज्जिउं
>
> —दशवैकालिक ६ ११

इसलिये किसी को मारना नहीं चाहिये. मारना हिंसा है, जो कर्म का मूल है:—

> "कम्ममूलं च जं छणं ।"
>
> —आचारांग १।३।१

ज्ञान का सार यही है कि व्यक्ति हिंसा करना छोड़ दे:—

> एवं खु णाणिणो सारं,
> जं न हिंसइ किंचणं ॥
>
> —सूत्रकृतांग १।१।४।१०

[illegible] के दो कारण बताये हैं—भय [illegible] हिंसा

> "[illegible] ॥"

सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।—

सव्वे जीवा वि इच्छंति,
जीविउं न मरिज्जिउं

—दशवैकालिक ६।११

इसलिये किसी को मारना नहीं चाहिये. मारना हिंसा है जो कर्म का मूल है:—

"कम्ममूलं च जं छणं ।"

—आचारांग १।३।१

ज्ञान का सार यही है कि व्यक्ति हिंसा करना छोड़ दे:—

एवं खु णाणिणो सारं,
जं न हिंसइ किंचणं ॥

—सूत्रकृतांग १।१।४।१०

महात्मा बुद्ध ने पाप के दो कारण बताये हैं—भय और हिंसा:—

"अघमूलं भयं वधो ॥"

—थेरीगाथा १६।१।४९३

प्राणियों की आत्मा भी वैसी ही है, जैसी अपनी आत्मा है. [ज]ैसे हमें सुख-दुःख का अनुभव होता है, वैसे ही इन्हें भी होता [है]. "जैसा मैं हूं, वैसे ही ये प्राणी हैं और जैसे ये हैं, वैसा ही मैं [हूं]. इस प्रकार सबको आत्मसमान समझ कर न किसी का वध [क]रना चाहिए और न कराना चाहिए" कहा है:—

अभयदान

[illegible]

[illegible] अहिंसा [illegible] 'अहिंसा' [illegible] 'अहिंसा' है. अहिंसा के उस अर्थ को व्यक्त करने वाला शब्द है—"अभयदान"

भयंकर व्यक्ति भयदान करता है और अहिंसक व्यक्ति अभयदान। जिसके हृदय में सहानुभूति होती है—दया होती है, वह अभयदान करता है. वस्तुओं के दानों में अभयदान का महत्व निश्चय ही अधिक है. यह बात महापुरुषों के या सज्जनों के द्वारा ही समर्थित नहीं है; बल्कि एक चोर ने भी एक बार इस सिद्धान्त का पूरा-पूरा समर्थन किया था. सो कैसे सुनिये.

वसन्तपुर में अरिदमन नामक एक राजा राज्य करता था. उस जमाने में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी; इसलिये उसने पाँच बार विवाह किया था. हाथ की पाँचों ऊंगलियाँ समान नहीं हुआ करतीं. उन पांचों रानियों का स्वभाव भी अलग-अलग था. राजा की सेवा के लिए सभी रानियाँ तत्पर रहती थीं; परन्तु राजा को उनमें से चार रानियाँ ही प्रिय लगती थीं. एक अप्रिय थी. प्रिय रानियों को जैसी सुख-सुविधाएं, वस्त्रा-भूषण और खान पान दिया जाता था, वैसा अ

एक दिन एक नामी चोर, जिसने कई महीनों मे प्रजा को परेशान कर रखा था, रंगे हाथों पकड़ लिया गया. चोरी के अतिरिक्त अनेक हत्याओं के भी उस पर आरोप थे; इसलिये राजा ने उसे फांसी पर लटका कर मार डालने की सजा सुना दी.

दूसरे दिन प्रातःकाल चोर को फाँसी पर चढाया जाने वाला था. एक रानी के मन में दया आई. उसने राजा से प्रार्थना करके फांसी की सजा एक दिन आगे बढवा दी और उस दिन उसे उत्तम भोजन कराया.

दूसरी रानी ने सोचा कि इस पुण्य लाभ से मैं वंचित क्यों रहूं. फलस्वरूप उसने भी प्रार्थना करके एक दिन आगे सजा बढ़वा दी. उसने भी उत्तम भोजन-वस्त्र से उसका सत्कार किया.

फिर क्रमशः तीसरी ने और चौथी ने भी इसी प्रकार एक-एक दिन आगे सजा बढ़वा कर और अधिक से अधिक मूल्यवान् भोजन-वस्त्र देकर उसका आतिथ्य किया.

अब रह गई—पाँचवीं रानी. हिम्मत करके वह भी राजा के पास पहुँची. उसने विनयपूर्वक कहा—"स्वामिन्! चोर के विपय में मैं भी कुछ मांगने आई हूं. कई वर्पों से मैंने आपके सामने कोई माँग नहीं रखी है; इसलिये कृपा करके यह छोटी सी मांग आप अवश्य स्वीकार करेंगे—यह आशा लेकर आई हूं. यदि आप वचन दें तो मैं अपनी प्रार्थना प्रस्तुत करूं."

राजा ने सोचा कि पिछली रानियों की तरह यह भी एक दिन चोर की सजा आगे बढ़वाने की मांग लेकर आई होगी।

इसमें उसका अपना स्वार्थ कुछ नहीं है; इसलिए इसकी मांग को पूरी कर दी जाय तो क्या आपत्ति है? बोला—"कहो, तुम्हारी क्या मांग है? मैं उसे पूरी करने का वचन देता हूं."

रानी ने कहा—"नाथ! मैं चाहती हूं कि चोर को अभय-दान दिया जाय. पिछले चार दिनों से उसके सिर पर जो मौत का भय सवार है, उसने उसके खून को सुखा दिया है—उसे अत्यन्त बेचैन बना दिया है. उसके जीवन सुधार के लिए मैं समझती हूं इतना ही दण्ड पर्याप्त होगा."

राजा वचन दे चुका था; इसलिये उसने चोर को अभयदान दे दिया. उसकी फांसी की सजा माफ कर दी गई. पाँचवां दिन चोर ने पाँचवीं रानी के यहां बिताया और साधारण वस्त्र-भोजन का आतिथ्य पाया. रानी ने प्रारंभ में ही उसे खुश-खबर सुनाते हुए कहा—भाई! तुम्हारी फांसी की सजा मैंने माफ करवा दी है. कल तुम्हें छोड़ दिया जायगा; परन्तु शर्त यही है कि तुम भविष्य में ऐसे काम न करोगे कि जिनसे तुम्हें फिर पकड़ा जाये. और किसी भी प्रकार का दंड दिया जाये. तुम भी अन्य मनुष्यों की तरह एक मनुष्य हो. जब कुत्ता भी अपना पेट भर लेता है तब तुम भूखे कैसे रह सकते हो? परिश्रम करो और पेट भरो."

यह सुनकर चोर के आनन्द का पार न रहा. आज के साधारण भोजन में भी उसे अभयदान मिल जाने से अपूर्व स्वाद आया.

उधर चारों रानियों में एक विवाद छिड़ गया. पहली ने कहा कि मैंने अमुक मिठाई बनाई थी, इसलिये मेरा आतिथ्य

तुम तीनों से अच्छा रहा. फिर दूसरी, तीसरी और चौथी ने भी यही बात कही. सभी अपने अपने भोजन की प्रशंसा करके अपने आतिथ्य को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास कर रही थीं. अन्त में किसी ने सुझाव दिया कि हम क्यों न राजा के पास जाकर अपना विवाद मिटा लें. वे जो कुछ कह देंगे, उसी को सब स्वीकार कर लेंगे; इससे विवाद का आसानी से फैसला हो सकेगा. सुझाव सब ने पसन्द किया. वे तत्काल राजा के पास पहुँची. सबने अपनी-अपनी बात सामने रखी और राजा से फैसला करने का आग्रह किया.

राजा ने कहा:-"चोर आज यहीं है. उसे कल छोड़ा जायगा. तुम्हारे आतिथ्य का उसी ने अनुभव किया है; इसलिए उसीसे इस विवाद का फैसला करवा दिया जाय तो अधिक अच्छा रहेगा."

राजा ने पाँचवीं रानी को और चोर को तत्काल बुलवा लिया और उससे पूछा:—"चोर! पिछले पाँच दिनों से तुम इन पाँचों रानियों में से एक-एक का आतिथ्य प्रतिदिन पाते रहे हो. मैं पूछना चाहता हूं कि तुम्हें किस के आतिथ्य में अधिक आनन्द आया"

चोर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया:—"महाराज! यद्यपि इन चार रानियों के यहाँ मुझे उत्तम भोजन-वस्त्र प्राप्त होता रहा है; किन्तु मृत्यु भय के मारे मुझे उसमें कोई आनन्द नहीं आया. प्रतिदिन मैं सोचता था कि आज बच गया हूँ, पर कल तो मरना ही है. इसके विपरीत इन पाँचवीं रानीजी के यहाँ, जहाँ मैं आज का आतिथ्य पा रहा हूँ, बहुत-बहुत आनन्द आ रहा है. 'अभयदान' मिल जाने से— मौत का भय टल जाने से साधारण

भोजन भी अमृत की तरह स्वादिष्ट लगने लगता है. फिर रा
जी के उपदेश ने भी मुझे दानव से मानव, चोर से साहूका
शैतान से इन्सान बनने की प्रेरणा दी है. कल से साधारण ना
रिकों की तरह मैं भी परिश्रम करके ही अपना और अ
कुटुम्बियों का भरण पोषण करने का संकल्प कर चुका हूँ. जीव
सुधार का यह संकल्प भी कम सन्तोष जनक नहीं है. इस प्रका
के आज के आतिथ्य को ही मैं हर दृष्टि से श्रेष्ठ मानता हूँ."

चोर के इस फैसले से सबने अभयदान का महत्व समझा.
राजा पाँचवीं रानी से भी प्यार करने लगे दूसरे दिन चोर छोड़
दिया गया और इधर पाँचों रानियाँ मिलजुल कर प्रेमपूर्व
रहने लगी. पाँचवीं रानी ने अपनी चतुराई से चोर को तो
सुधार ही दिया, साथ ही सबका प्यार भी पाया.

महाकवि भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि सज्जनों में जो गुण
होते हैं, वे अभिप्राय [illegible] की तरह कठोर होते हैं. [illegible]
[illegible] —

।—इस विषम (दुष्कर) असिधारा व्रत (तलवार की धार लने की साधना) का लक्ष्य सज्जनों के लिए किसने निर्धा- किया है ?

सज्जनों के इस गुणों में आतिथ्य सत्कार को भी गिनाया है. पांचवीं रानी ने उसमें अभयदान का समावेश करके और भी दिव्य, भव्य और आकर्षक बना दिया.

प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा गया है:—

"दाणाणं चेव सेट्ठं अभयदाणं ॥"

सब दानों में अभयदान श्रेष्ठ है. द्वारका—नरेश उग्रसेन की ो राजिमती से विवाह करने के लिए जब अरिष्टनेमिकुमार रात सजाकर दूल्हे के रूप में पहुँचे तो वहाँ एक बाड़े में घिरे जंगली सूअर, हरिण आदि पशुओं को देखकर आपने सारथी उन्होंने पूछा—"इस बाड़े में पशुओं का यह विशाल झुण्ड ों रखा गया है ?"

सारथी जानता था. उसने कह दिया— "स्वामिन् ! यहाँ विवाहोत्सव के लिए आमन्त्रित अभ्यागतों में जो मांसाहारी हैं, नका भोज इन पशुओं की हत्या के द्वारा तैयार किया जायगा; सीलिये आज इन्हें इस बाड़े में घेर कर रखा गया है."

दुष्ट दूसरों का दोष देखते हैं और शिष्ट अपना. सारथी के उत्तर से अरिष्टनेमि ने अपने को ही इस हत्याकांड का अप- राधी मान लिया. उन्होंने सोचा कि यह पशुवध इसीलिये होने वाला है कि मैं दूल्हा बनकर आया हूं. यदि मेरा विवाह रुक जाय तो पंचेन्द्रिय प्राणियों की यह घोर हिंसा भी रुक सकती

[illegible]

[illegible]

जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन की यह प्रभावशाली घटना आज भी अभयदान की दुन्दुभि बजा रही है और उसके लिए भव्य जीवों को प्रेरित कर रही है.

धारा नगरी के नरेश पद्मराव एक बार किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो गये. बड़े-बड़े वैद्यों की चिकित्सा भी सफल न हुई. अन्त में किसी अन्धविश्वासी सिरफिरे ने सुझाव दिया कि यदि आप नौ सौ नव दम्पतियों के खून से स्नान कर लें तो बीमारी मिट सकती है. राजा की आज्ञा से एक किले में नौ सौ नव-दम्पति कैद कर लिये गये. दूसरे दिन उन्हें घाणी में पेलने का कार्यक्रम था.

किले के रक्षक शेरसिंह के मन में उन निरपराध नौ सौ नव-दम्पतियों के प्रति सहानुभूति पैदा हो गई. रात को ही बारह बजे किले का फाटक खोल कर उसने समस्त बंदियों को छोड़ दिया.

ह जानता था कि धारानरेश को इस बात का पता लगेगा तब
ुझे भी अपने प्राणों को छोड़ना पड़ेगा. अट्ठारह सौ स्त्री-पुरुषों
ो बचाने का पुरस्कार होगा—अपनी मौत ! वह इसके लिए
ैयार था; किन्तु वह वीरों की मौत मरना चाहता था, कायरों
ी नहीं.

धारानरेश ने बन्दियों के छोड़ने की बात का पता लगते ही
ि‍पाहियों की जिस टुकड़ी को वहाँ भेजा, उसे शेरसिंह ने जमीन
र सदा के लिये सुला दिया. क्रुद्ध होकर राजा ने शेरसिंह
ो पकड़ लाने के लिये दूसरी बार सैनिकों की दो-तीन टुकड़ियाँ
क साथ भेज दीं. घोर युद्ध हुआ. शेरसिंह ने लड़ते-लड़ते
ीरगति पाई. जहाँ उसका सिर गिरा, वहाँ हिन्दुओं ने और
हाँ धड़ गिरा वहाँ मुसलमानों ने स्मारक बना लिये. आज भी
बन्दी छोड़ महाराज" के नाम से हिन्दू और मुसलमान शेरसिंह
ा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते है. अपने प्राणों की आहुति देकर
ौ सौ दम्पत्तियों को बचाने वाले उस वीर युवक का नाम
मर करने वाला कौन सा धर्म था ? अभयदान, जो सब दानों
ें श्रेष्ठ है:—

"दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणं ॥"

—सूत्रकृतांग १/६/२३

धर्मोपदेश

जिनवाणी रसिको !

महापर्व पर्युषण के उपलक्ष्य में किये गये पिछले चार प्रवचनों में यह बताया गया था कि कर्त्तव्य की प्रेरणा के लिये सूत्रों का अर्थ समझने पर ही अहिंसा धर्म और अभयदान का महत्त्व ध्यान में आता है.

आज पांचवें दिन हमें धर्मोपदेश का महत्व समझना है. जिनमें स्वयं शास्त्र पढ़कर समझने की योग्यता नहीं है, वे साधु सन्तों के प्रवचन, व्याख्यान, उपदेश सुनकर भी कर्त्तव्य-धर्म की जानकारी पा सकते हैं.

धर्म गुरूओं की साधारण-सी बात से भी जीवन में परिवर्तन हो सकता है. धर्मस्थान में सुनी हुई साधारण वाणी भी कितनी उपयोगी होती है और मनुष्य को किस प्रकार नास्तिक से आस्तिक बना सकती है—इसका सुन्दर दृष्टान्त सुनिये:—

एक जैन महिला का पति नास्तिक था. पत्नी उसे आस्तिक बनाने का बराबर प्रयास करती रहती थी. एक वर्ष की बात है. चातुर्मास आया. पर्युषण पर्व बैठे. पत्नी ने आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि धर्माराधना के ये विशेष दिन हैं; पर्युषण के आठ दिनों में से चार दिन बीत चुके हैं; आज पाँचवाँ दिन है. यदि आज भी आप उपाश्रय में नहीं पधारे तो मुझे महान् दुःख होगा. मेरी खुशी के लिये सही; आज आप वहाँ अवश्य चलिये.

पति न चलना मंजूर किया; किन्तु एक शर्त पर कि जव तक मेरी इच्छा होगी, तभी तक वहाँ ठहरूंगा.

पति ने भी सोचा कि इच्छा के वहाने ये उपाश्रय में आते ही लौट जायेंगे; इसलिये उसने भी एक शर्त रख दी. बोली कि आपको उपाश्रय में सुने हुए चार वाक्य तो कम से कम याद होने ही चाहिये. आज मेरा पौषध व्रत है; इसलिये मैं कल सुवह लौटूंगी और उस समय तक आपको वे वाक्य याद रहने चाहिये. मैं कल आपके मुंह से वाक्य सुनूंगी तभी समझूंगी कि आप उपाश्रय पधारे थे, अन्यथा नही.

दोनों ने दोनों की शर्तें सहर्ष मंजूर कर लीं. पति निश्चित समय पर उपाश्रय (धर्म स्थान) में पहुँचा. पहले से ही वहाँ जो लोग वैठे हुए थे, उनमें से एक ने कहा—"क्यों भाई ! आये क्या ?"

यह सुनकर वह वैठ गया तो दूसरे ने कहा—"क्यों भाई ! वैठे क्या ?"

फिर उठने पर किसी ने कह दिया:—"क्यों भाई ! उठे क्या ?"

अव तक वह छोटे छोटे तीन वाक्य सुन चुका था. अव एक वाक्य उसे और सुनना था. जव वह वाहर निकलने लगा तो किसी के मुंह से चौथा वाक्य सुनाई पड़ा:—"क्यों भाई चले क्या ?" वस, उसका काम पूरा हो गया था. इन चारों वाक्यों वह दिन-भर गुन गुनाता रहा, जिससे कि भूल न जाय.

[illegible]

[illegible]

अब चोर घबराया. उसे मालूम हो गया कि मकान मालिक ने मुझे देख लिया है। चोरी का इरादा छोड़कर ज्यों ही वह उठा कि फिर तीसरा वाक्य सुनाई दिया:—"भाई ! उठे क्या ?"

अब तो चोर को केवल भागना ही सूझ रहा था. वह चुप-चाप निकलने के लिये सेंध के समीप पहुँचा ही था कि चौथा वाक्य सुनने में आया:—"भाई ! चले क्या ?"

चोर भाग गया. माल बच गया. मकान मालिक को नींद आ गई. सुबह हुई. वह उठा. आवश्यक शौचादि क्रियाओं से निवृत हुआ. उधर पौपधशाला से पत्नी भी लौट आई. आते ही उसने घर की दीवार में सेंध लगी हुई देखी. उस स्थान से कुछ दूर तक एक आदमी के आने और लौटने के पाँवों के निशान भी आँगन में लगे हुए देखे. सामान देखा. पता चला कि किसी वस्तु की चोरी नहीं हुई है. सब सामग्री ज्यों की त्यों हैं. उसे सन्तोष हुआ.

पतिदेव से उसने पूछा कि क्या रात को अपने घर में चोर घुस आया था. उत्तर में पति ने कहा:—"मुझे कुछ नहीं मालूम.

मैं तो अपनी शर्त निभाने के लिए उपाश्रय में सुने हुए चार वाक्य रटता रहा और उनका उच्चारण करते-करते ही पता नहीं कब आंख लग गई."

"अच्छा ! सुनाइये तो ? वे चार वाक्य कौन-कौन से हैं ? मैं भी तो सुनूं !" —पत्नी बोली.

पति ने चारों वाक्य क्रमशः सुना दिये:—"भाई ! आये गया ? भाई ! बैठ गया ? भाई ! उठ गया ? भाई ! चले गया ?"

पत्नी सब कुछ समझ गई. उसने कहा:—'नाथ ! इन वाक्यों ने अपने घर का माल बचा लिया है. देखिये यहां चोर ने दीवाल में सेंध लगाई थी. ये उसके आने और जाने के पैरों के निशान हैं. आपके इन वाक्यों से ही घबरा कर चोर भाग गया था—ऐसा लगता है"

पति भी यह सब देखकर बहुत प्रसन्न हुआ. उसने सोचा कि केवल एक मिनिट में किसी के भी मुंह से सुने हुए छोटे-छोटे चार वाक्यों से जब इतना लाभ हो सकता है, तब घंटे भर तक साधु-सन्तों के मुंह से सुने हुए प्रवचनों से कितना लाभ हो सकता है ? बस, उसी दिन से उसकी विचार धारा बदल गई. वह नास्तिक से आस्तिक बन गया. पत्नी का चिरकालीन प्रयास सफल हो गया.

इस घटना में सिर्फ धन रक्षा की बात कहीं गई है; परन्तु सन्तों के मुंह से निकले हुए साधारण वाक्य से कभी-कभी प्राण रक्षा तक हो सकती है. कैसे ? सुनिये:—

[illegible]

सभा का [illegible] नाई ने मन्त्री का पूरा षड्यन्त्र खोल कर रख दिया. राजा ने नाई को पुरस्कार देकर विदा किया और मन्त्री को तत्काल फाँसी पर लटका दिया. फिर मन ही मन उसे विचार आया कि एक मुनि के मुख-कमल से निकले हुए छोटे से दोहे के कारण आज मेरी प्राण रक्षा हो गई तो यदि मैं उनकी संगति में रहकर निरन्तर सुभाषित सुनता रहूँ तो क्या मेरी जीवन रक्षा न होगी? अवश्य होगी. उस दिन से वह भी नास्तिक से आस्तिक बन गया और साधु संगति में रहने लगा. उस प्रभावशाली घटना ने उसके जीवन की दिशा ही मोड़ दी.

किसी ने ठीक ही कहा है:—

संसार विषवृक्षस्य,
द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषित रसास्वादः
सङ्गतिः सुजने जने ॥

—हितोपदेशः १।१५८

संसार एक जहरीला वृक्ष है, परन्तु इस पर दो फल अमृत के समान लगते हैं. पहला—सुभाषित रस का और दूसरा है—सत्संग.

जगत् में जीवन को सुशोभित करने वाला सुभाषित एक रत्न है:—

> पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि,
> जलमन्नं सुभाषितम् ।
> मूढैः पाषाणखण्डेषु,
> रत्न संज्ञा विधीयते ॥
>
> —वृद्धचाणक्य शतकम् १४।१

इस पृथ्वी में केवल तीन रत्न हैं—जल, अन्न, और सुभाषित. वे लोग मूर्ख हैं, जो (चमकीले) पत्थर के टुकड़ों को "रत्न" कहा करते हैं.

सुभाषित में जो माधुर्य होता है, उसका आकर्षक ढंग से वर्णन करते हुए एक कवि ने कहा है:—

> द्राक्षा म्लानमुखी जाता,
> शर्करा चाश्मतां गता ।
> सुभाषितरसस्याग्रे,
> सुधा भीता दिवं गता ॥
>
> —सुभाषितरत्न भा० पृ० २९

सुभाषित के रस के सामने दाख का चेहरा मुरझा गया, शक्कर पत्थर की तरह कठोर हो गई और अमृत तो डर के मारे सीधा स्वर्गधाम में जा पहुँचा !

जिसे सुभाषित में आनन्द आने लगता है, उसे अन्य पदार्थों में कोई खास आनन्द नहीं आता. सुभाषित जीवन को अलंकृत

करते हैं—जीवन का उत्थान करते हैं—जीवन में असीम सु
की सुगन्ध भर देते हैं; इसलिए वे सदा सबके लिए सब जग
उपादेय हैं।

दुष्ट पुरुषों के मुंह से कुभाषित निकलते हैं—पापोपदेश
प्रकट होते हैं और साधुओं के मुंह से सुभाषित निकलते हैं—
धर्मोपदेश प्रकट होते हैं.

श्रावक का अर्थ है—सुनने वाला. और श्रद्धा विवेक पूर्वक क्रिया
करना। जो धर्म गुरूओं से धर्मोपदेश का श्रवण करता है, एवं
तदनुरूप प्रवृत्ति करता है वही सच्चा श्रावक है या सच्ची
श्राविका है. श्रावक-श्राविकाओं को धर्मोपदेश का श्रवण करना
ही चाहिए.

परन्तु सच पूछा जाय तो तप एक बहुत व्यापक शब्द है. भगवान् महावीर स्वामी ने उसके दो भेद बताये हैं—बाह्यतप और अभ्यन्तर तप. फिर बाह्यतप के छह प्रकार बताये हैं:—

अणसणमूणोयरिया,
वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ।
कायकिलेसो संली-
णया य बज्झो तवो होइ ॥

अर्थात् अनशन (भोजन का त्याग जिसे लोग उपवास कहते हैं) ऊनोदरिता (भूख से कुछ कम खाना), वृत्तिसंक्षेप (खाद्य, पेय, उपभोग्य वस्तुओं में से कुछ का त्याग), रसत्याग (छह रसों में से कुछ का त्याग), कायक्लेश (सार्थक शारीरिक कष्ट सहना) और संलीनता (इंद्रियो पर संयम —ये बाह्यतप हैं.

इसी प्रकार अभ्यन्तर तप के भी छह प्रकार प्रकट किये गये हैं:—

पायच्छित्तं विणओ,
वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं उस्सग्गोविअ,
अब्भितरओ तवो होई ॥

अर्थात् प्रायश्चित्त, विनय, वैया-वृत्य (सेवा), स्वाध्याय (धर्मशास्त्रों का नियमित पारायण), ध्यान (धर्म ध्यान एवं शुक्लध्यान) और कायोत्सर्ग—ये अभ्यान्तर तप हैं.

एक व्याख्या के अनुसार:—

"तप्पते अणेण पावं कम्ममिति तवो"

—निशीथचूर्णिभाष्य गाथा ४६

जिससे पापकर्म तप्त होता है—नष्ट होता, वह तप है. ... र्मों पाप नहीं कर सकता और तप के साथ संयम का निरन्तर नियमित सम्बन्ध है, जहाँ संयम होता है, वहाँ निश्चय तप होता है और जहाँ तप होता है, वहाँ निश्चय ही संयम होता है:—

यत्र तपस्तत्र नियमात्संयमः ।
यत्र संयमस्तत्र नियमात्तपः ॥

—निशीथचूर्णिभाष्य ३३३२

तपस्या का लाभ है—कर्मनिर्जरा करोड़ भवों में संचित कर्मों को भी तप से निर्जरा हो जाती है:—

"भवकोडी संचिअं कम्मं
तवसा निज्जरिज्जइ ॥"

—उत्तराध्ययन ३०।६

यही नहीं; बल्कि यहां तक कहा गया है कि जिस प्रकार तपस्वी तप से कर्मों को नष्ट करता है, वैसे तपका अनुमोदन करने वाला—तपस्वी की प्रशंसा करने वाला—तपोधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाला भी अपने कर्मों को नष्ट कर डालता है:—

जहा तवस्सी धुणते तवेणं
कम्मं, तहा जाण तवोऽणुमंता ॥

—बृहत्कल्पभाष्य ४४०१

कला में कुशल हो गये. फिर वाराणसी नरेश को अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिये बनारस पहुंचे. वहाँ नगर के प्रांगण में ऊंचा खम्भा रोपकर लम्बा रस्सा बांधकर उसके सिर पर वे खड़े-खड़े नाना प्रकार के नृत्य दिखा रहे थे नगर की जनता एवं राजा नृत्य को देखने भारी मात्रा में उपस्थित थी। नृत्य करता हुआ नट बार-बार पुरस्कार के लिये नीचे आता और राजा नटकन्या के रूप में लावण्य आशक्त था, वह चाहता था कि नट उपर से नीचे गिर पड़े और जीवन लीला उसकी समाप्त हो जाये तो मैं इस नटकन्या को अपने वश में कर लूं, अतः वह बहाना बनाकर टालता हुआ कह देता मुझे अभी निद्रा आ गई, मैंने नृत्य नहीं देखा ! आखिर अन्त में चौथी बार वह बांस पर चढ़कर नृत्य करता है कि उसी समय उनकी दृष्टि कुछ दूर एक भवन के द्वार पर पड़ी.

वहाँ एक मुनि को अत्यन्त सुन्दरी नवोढा स्त्री अपने कर-कमलों से तरह-तरह के स्वादिष्ट पकवान दे रही थी. मुनि की निर्मल दृष्टि झुकी हुई थी और वे अधिक लेने से बार-बार इन्कार कर रहे थे. इस दृश्य को देखकर कुमार के मन में विचार आया कि धिक्कार है मुझे; जो मैं एक नटकन्या को पाने के लिए बारह वर्ष से प्रयत्न कर रहा हूं. वे मुनिराज कितने शांत है, जो सामने सुन्दरी महिला को देखकर भी अपने मन को वश में किए हुए हैं—धन्य है उनका जीवन !

यह विचार पैदा होने से उनका प्रदर्शन बन्द हो गया था; इसलिए नरेश ने पुकारा—"नटकुमार ! क्या सो रहे हो ?"

कुमार ने यह सुन कर मन-ही-मन सोचा—'नरेश ठीक कहते हैं. मैं मोह 'निद्रा' गोद में सो ही तो रहा हूं ? और फिर

हाँ एक नगर सेठ का सम्माननीय पुत्र मैं ? और कहाँ यह नट-
ुमार की पदवी ? कितना पतन होगया है मेरा ?"

इस तरह अपनी मोह निद्रा का भाव, अवनति का ज्ञान
ौर मुनिराज की शान्त मुद्रा का आकर्षण—इन तीनों ने एक
ाथ प्रभावित करके इलायचीकुमारको विरक्त बना दिया. अनित्य
ाव की वृद्धि के साथ ही नृत्य करते इलायचीकुमार को केवल
ान हो गया।

तपस्या में यदि विवेक न हो तो वह किस प्रकार अनर्थकर
ो जाती—इस विषय बनारस की ही एक प्राचीन घटना
ुनियेः—

बनारस के सिंहासन पर महाराज अश्वसेन विराजमान थे.
उनके सुशील सुविवेकी सुपुत्र पार्श्वकुमार किसी दिन राजमहल
के गवाक्ष में बैठे हुए नगर की शोभा का अवलोकन कर रहे थे
कि सहसा उनकी नजर मनुष्यों की भीड़ पर पड़ी, जो नगर
से बाहर की ओर जा रही थी.

कारण जानने के लिए कुमार ने एक चाकर को भेज दिया.
उसके प्रतिवेदन से पता चला कि एक बड़ा नामी तापस आया
हुआ है. वह नगर के बाहर बैठकर पंचाग्नितप कर रहा है.
जनता उसी के दर्शनों के लिए जा रही है.

पार्श्वकुमार भी अश्वारूढ होकर तपस्वी कमठ की ओर
चले। वहाँ जाकर अपने ज्ञान के बल पर पार्श्वकुमार ने देख
लिया कि अग्निकुण्ड में जलने वाले एक लक्कड़ में नाग-नागिन
जोड़ा बैठा है!

करुणासागर पार्श्वकुमार के हृदय में उस जोड़े के प्रति अनुकम्पा जागृत हुई, साथ ही तापस के अविवेक पर उन्हें झुंझलाहट भी हुई. तापस को बुरी तरह फटकारते हुए बोले:—

"अरे ढोंगी ! तू समझता है कि मैं बड़ा धर्मात्मा हूं—तपस्वी हूं; किन्तु जहां विवेक है, वहां धर्म रहता है—अग्निकुण्ड में नाग-नागिन का एक जोड़ा जल रहा और इस बात का तुझे भान तक नहीं है. जहां हिंसा है, वहां तपस्या क्या खाक होगी ?"

तापस ने कहा:—"आपको दूरी के कारण देखने में भ्रम हुआ है—कुमार ! आश्चर्य है कि ये टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियां आपको सांप जैसी दिखाई दे रही हैं. जमीन पर खड़े होकर देखिये तब पता चलेगा कि घोड़े पर से जो नाग-नागिन दीखते हैं, वे वास्तव में लकड़ियां ही हैं."

इन व्यंग्यपूर्ण वचनों के उत्तर में कुमार ने कहा —"अरे मूर्ख ! प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती. सचाई क्या है ? सो अभी सब को मालूम हो जाती है ?"

इसके बाद अपने चाकरों से उस अधजले लक्कड़ को फड़वाया तो उसमें एक मृतप्राय नाग-नागिन का युगल निकला, जिसे देखकर सब लोग तापस के अविवेक को धिक्कारते हुए अपने-अपने घरों को लौट गये।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यही कुमार आगे चलकर तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुए.

कर्मों की निर्जरा के लिये तपस्या एक उत्तम साधन है; किन्तु

वह जितना उत्तम है, उतनी ही उसमें सावधानी की आवश्यकता है. तपस्वी को सदा यह सोचते रहना चाहिये कि जो तपस्या मैं कर रहा हूँ, वह कैसी है—किस प्रकार की है—उसमें हिंसा का मिश्रण तो नहीं है—उसका लक्ष्य क्या है—वह भौतिक सिद्धि के लिए है या आध्यात्मिक सिद्धि के लिए—उसके मूल में अविवेक तो नहीं है—वह प्रतिष्ठा के लिए की जा रही है या अपने कर्मों की निर्जरा के लिए आदि ।

यदि हम शुद्ध तप करें तो हमारे लिए असाध्य कुछ नहीं सकता—

यद् दुस्तरं यद् दुरापं,
यद् दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं,
तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

—मनुस्मृति ११।२३९

जो कठिनाई से तैरने योग्य है—कठिनाई से पाने योग्य है, कठिनाई से लांघने योग्य है और कठिनाई से करने योग्य है, वह सब तपस्या से सिद्ध हो सकता है, परन्तु तप स्वयं कठिनाई से करने योग्य है, वह 'दुरतिक्रम' है । दुष्कर है. यदि हम उससे लाभ उठाने के इच्छुक हों तो हमें उसके स्वरूप को भलीभांति समझ कर सच्ची तपस्या ही करना चाहिए ! पर्युषण पर्व सच्ची तपस्या का अभ्यास करने के लिए है.

क्षमाशीलता

श्रमणोपासको !

पर्युषण का पर्व आज सातवां दिन है. पिछले छह दिनों के छह प्रवचनों में आप सुन चुके हैं कि कर्तव्य प्रेरणा के लिये किस प्रकार सूत्रार्थज्ञान, अहिंसाधर्म, अभयदान, धर्मोपदेश और सच्ची तपस्या की आवश्यकता है. आज क्षमा के महत्व पर विचार करेंगे.

पर्युषण का एक नाम "क्षमापना पर्व" भी है. इससे सिद्ध होता है कि इस पर्व का आयोजन क्षमा मांगने और क्षमा करने के ही किया गया है. अपने द्वारा जान या अनजान में हुई पिछली वर्ष की भूलों के लिए इस पर्व के प्रसंग पर क्षमा-याचना की जाती है.

क्षमा मांगना साहस का काम है—अहंकारहीन नम्र व्यक्ति ही क्षमा याचना कर सकता है. क्षमा याचना करने वाली आत्मा ही आराधक हो सकती है कहा है:—

जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा ।

—बारह सौ सूत्र

क्षमा करना वीरता का कार्य है—धैर्यशाली गम्भीर सहिष्णु व्यक्ति ही क्षमा कर सकता है. स्वयं समर्थ हो कर—शक्ति-सम्पन्न होकर भी जो दुर्बल (कमजोर) अपराधी को क्षमा

अर्थात् मनुष्य की शोभा रूप से, रूप की शोभा गुण से गुण की शोभा ज्ञान से, और ज्ञान की शोभा क्षमा से होती है.
क्षमा से क्या सिद्ध नहीं होता ? सब कुछ सिद्ध होता है,

क्षमा बलमशक्तानाम्,
शक्तानां भूषणं क्षमा ।
क्षमा वशीकृतिर्लोके,
क्षमया किं न सिद्ध्यति ?

—वृद्धचाणक्यशतकम् १३/२२

क्षमा कमजोरों की शक्ति है—शक्तिशालीयों का अलंकार है—संसार में वशीकरण है—क्षमा से भला क्या सिद्ध नहीं होता ?

किसी ने कहा कि क्षमा के समान कोई तप नहीं है:—

"क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति ।"

—सुभाषितरत्नमंजूषा

महाकवि बाणभट्ट ने भी घोषित किया है:—

"क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम् ।"

—हर्षचरितम्

सभी तपस्याओं का मूल क्षमा है; इसलिए तपस्याओं से जो कर्मनिर्जरा होती है, वह क्षमा से भी होती है. एक शास्त्रीय कथा द्वारा इस बात की भरपूर पुष्टि होती है:—

महारानी धारिणी की बहिन का नाम था—मृगावती; और उनकी पुत्री का नाम था—चन्दनबाला. इस प्रकार मृगावती चन्दनबाला की मौसी थी; परन्तु चन्दनबाला ने पहले प्रव्रज्या ले ली थी. मृगावती ने बाद में प्रव्रज्या ली और सो भी चन्दनबाला के पास. इस प्रकार गृहस्थावस्था की अपेक्षा बड़ी होने पर भी दीक्षितावस्था में मृगावती चन्दनबाला की शिष्या होने से छोटी थी. आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा वह नहीं माना जाता, जो पहले पैदा होता है; किन्तु बड़ा वह माना जाता है, जिसका संसार पहले छूट जाता है.

एक दिन चन्दनबालाजी अपनी समस्त शिष्याओं के साथ भगवान् महावीर के समवसरण में प्रवचन सुनने गईं. वहां दर्शन वन्दन एवं प्रवचन श्रवण के लिए अन्य देवों के अतिरिक्त चन्द्र और सूर्य भी आये थे. उनके प्रकाश में रात भी दिन की तरह भासित होती थी. प्रवचन की धारा अखण्ड रूप से प्रवाहित हो रही थी; रात को साधु या साध्वियाँ अपनी वसति के बाहर ठहर नहीं सकतीं—इस नियम के अनुसार सूर्यास्त का समय हो चन्दनबाला जी और उनकी सभी शिष्याएं अपनी 'वसही' (उपाश्रय) में चली गईं. केवल मृगावती वहीं रह गई. प्रवचन सुनने में वह इतनी लीन हो गई थी कि उसे यह पता नहीं लग पाया कि अन्य सब साध्वियाँ कब वहाँ से उठकर रवाना हो गई थीं.

जब सूर्य और चन्द्र चले गये, तब उसे पता चला कि रात हो गई है. अपनी असावधानी के लिए पछताती हुई मृगावती वहाँ से उठकर साध्वियों की 'वसही' की ओर चल पड़ी.

[illegible]

अंधेरी रात में किसी [illegible] आ [illegible] ने साध्वियों को समझाने में [illegible] करते हुए 'निस्सहि-निस्सहि-निस्सहि' का उच्चारण किया. यों ही आवाज [illegible] चन्दनबाला ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा [illegible] की सूर्यास्त के बाद अपनी वसती के बाहर रहना शोभास्पद नहीं है।

मृगावती ने यथार्थ बात कहते हुए अपनी असावधानी के लिए क्षमायाचना की. वह बोली कि सूर्य-चन्द्र की उपस्थिति के ही कारण रात में भी उसे दिन का भ्रम हो गया था और प्रवचन में तल्लीनता के कारण उसे अन्य साध्वियों के उठने और चले जाने का भी ध्यान न रह सका; फिर भी यह असावधानी या प्रमाद तो है ही; इसलिए चन्दनबाला के चरणों में प्रणाम करके वह बार-बार क्षमायाचना करने लगी और नींद न आने से बैठी-बैठी उनके पांव दबाती रही.

चन्दनबाला को नींद आ गई; परन्तु तीव्र पश्चात्ताप और अपने प्रमाद के लिए लज्जित होने के कारण मृगावती को अब तक नींद नहीं आ रही थी. नींद दूर सुदूर चली गई थी, वह बैठी-बैठी उत्तम विचारों में रमण कर ही रही थी कि क्षमापना के जल ने आवरण के पावक को प्रशान्त कर दिया और सहसा उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया. जो केवल ज्ञान घोर तपस्या के बाद प्राप्त होता है, वही क्षमायाचना से प्राप्त हो

जाता है. क्षमायाचना और पश्चात्ताप की तीव्र परिणति ने मृगावती को कितना ऊँचा उठा दिया था !

थोड़ी ही देर बाद एक साँप शय्या के पास से होकर गुजरा. मृगावती ने चन्दनबाला जी का हाथ उपर उठा दिया, जिससे कि साँप निर्बाध गति से आगे बढ़ता हुआ अपने गन्तव्य स्थल की ओर जा सके. साँप चला गया. मृगावती जी द्वारा चन्दनबालाजी का हाथ यद्यपि बहुत धीरे से उठाया–रखा गया था; फिर भी इससे उनकी नींद खुल गई. उन्होंने जब ऐसा करने का कारण पूछा तो मृगावतीजी ने कहा:—"एक साँप जाता हुआ दिखाई दिया था, उसके मार्ग में आपका हाथ बाधक बन सकता था; इसलिए मैंने उसे जरा ऊपर उठा दिया था !"

चन्दनबाला ने फिर पूछा:—"रात के इस घोर अँधेरे में काला नाग तुम्हें कैसे दिखाई पड़ गया ?"

"आपके प्रताप से !"

"तो क्या तुम्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया है ?"

"आपके प्रताप से !"

यह सुनना था कि तत्काल चन्दनबालाजी शय्या से उठ बैठीं और अपनी अनुचित डाँट-फटकार के लिये बार-बार मृगावतीजी से क्षमा याचना करने लगीं. धीरे-धीरे पश्चात्ताप के परिणामों से भावशुद्धि हो जाने पर उन्हें भी केवल ज्ञान प्राप्त हो गया.

इस कथा से अनेक बातों की शिक्षा मिलती है. कुछ ये हैं:—

तो महात्माजी ने उत्तर दिया—"भाइयों ! जब यह बार-बार डंक मारने का अपना स्वभाव बिच्छू होकर भी नहीं छोड़ता, तब मनुष्य होकर मैं इसे क्षमा करने और बचाने का स्वभाव कैसे छोड़ देता ?"

क्रोध से क्रोध कभी नष्ट नहीं होता. क्षमा से ही क्रोध नष्ट हो सकता है. अपने अपराधों के लिए आप सच्चे हृदय से एक बार क्षमा-याचना करके देखिये— आपको ऐसा अनुभव होगा मानो कोई बड़ा भारी बोझ आपके मस्तक पर से नीचे उतर गया है. क्षमा माँगने से आपको एक प्रकार की हार्दिक प्रसन्नता होगी. ऐसी ही प्रसन्नता क्षमा करने से भी होती है. "क्षमा मांगना" और "क्षमा करना"—इन दोनों अर्थों का समावेश जिस एक शब्द में होता है, वह है—क्षमापना. क्षमापना से होने वाले लाभ का उल्लेख करते हुए कहा गया है:—

"खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ ॥"

—उत्तराध्ययन २९।१७

क्षमापना से प्रसन्नता के भाव की उत्पत्ति होती है.

क्षमाशील व्यक्ति का कल्याण इस लोक में तो होता ही है, परलोक में भी होता है:—

"क्षमावतामयं लोकः
परश्चैव क्षमावताम् ॥"

—महाभारत, आदिपर्व

[illegible]

धर्मलाभ

धर्मानुरागियो !

आज पर्युषण पर्व का अन्तिम दिन है. जैसे कर्म अ
वैसे ही पर्युषण पर्व के दिन भी आठ हैं. यदि ए
एक-एक कर्म के स्वरूप को समझ कर उसे क्षीण
प्रयास किया जाय तो बहुत कुछ आत्म शुद्धि हो सकती है
सिद्धि के लिए शुद्धि जरूरी है. जहां शुद्धि नहीं वहां सिद्धि
नहीं.

संसार में दो धाराएं बह रही हैं—ईर्ष्या, द्वेष, असहिष्णुता
आदि की प्रोत्साहिका भौतिक धारा और दुष्प्रवृत्ति को हटाने की
आत्मा से 'परमात्मा' पद पाने की प्रोत्साहिका आध्यात्मिक
धारा.

जब तक आत्मज्ञान न हो तब तक संसार से मुक्ति की बात
समझ में नहीं आ सकती. शरीर; अवस्था, धन या बल से जो
बड़ा है, वह बड़ा नहीं, आत्मज्ञानी ही वास्तव में बड़ा है.

लोग सुख चाहते हैं, दुःख नहीं. दुःख भीतर से पैदा होता
है, बाहर से नहीं. व्यक्ति अपने को खुद ही दुखी बनाता है
और खुद ही सुखी. पाप का फल दुःख है और धर्म का फल सुख.

सचाई और सद्भाव ही सज्जनता है, जिससे सुख वृद्धि
होती है. इससे विपरीत दुर्जनता है, जिससे दुखवृद्धि होती है.

तो महात्माजी ने उत्तर दिया—"भाइयों ! जब यह बार-बार डंक मारने का अपना स्वभाव बिच्छू होकर भी नहीं छोड़ता, तब मनुष्य होकर मैं इसे क्षमा करने और बचाने का स्वभाव कैसे छोड़ देता ?"

क्रोध से क्रोध कभी नष्ट नहीं होता. क्षमा से ही क्रोध नष्ट हो सकता है. अपने अपराधों के लिए आप सच्चे हृदय से एक बार क्षमा-याचना करके देखिये— आपको ऐसा अनुभव होगा मानो कोई बड़ा भारी बोझ आपके मस्तक पर से नीचे उतर गया है. क्षमा माँगने से आपको एक प्रकार की हार्दिक प्रसन्नता होगी. ऐसी ही प्रसन्नता क्षमा करने से भी होती है. "क्षमा मांगना" और "क्षमा करना"—इन दोनों अर्थों का समावेश जिस एक शब्द में होता है, वह है—क्षमापना. क्षमापना से होने वाले लाभ का उल्लेख करते हुए कहा गया है:—

"खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ ॥"

—उत्तराध्ययन २९।१७

क्षमापना से प्रसन्नता के भाव की उत्पत्ति होती है.

क्षमाशील व्यक्ति का कल्याण इस लोक में तो होता ही है, परलोक में भी होता है:—

"क्षमावतामयं लोकः
परश्चैव क्षमावताम् ॥"

—महाभारत, आदिपर्व

पर्युषण पर्व की क्षमापनाओं के अवसर पर पारस्परिक [illegible] मिलन के लिए हम क्षमापना [illegible]

वस्तुएं भी उस हड्डी के टुकड़े जैसी ही हैं उनसे मिलने वाला क्षणिक आनन्द भी वास्तव में अपने भीतर से ही आता है, पर भ्रम से हम समझते हैं कि वह उस विषय वस्तु से मिल रहा है; अन्यथा अन्धे को सौन्दर्य का और बहरे को संगीत का आनन्द क्यों नहीं आता ? विषय वस्तुओं की अधिकता देखकर लोग ईर्ष्यावश आक्रमण करते हैं, लूटपाट करते है, मारपीट करते हैं ? और परिग्रही व्यक्ति यदि उनका त्याग कर दें तो वे (आक्रमण करने वाले लोग) आपस में कुत्तों की तरह छीना-झपटी कर वर्बाद होते हैं. धर्म ही ऐसा तत्व है, जो सबकी आँखें खोल सकता है.

छूटने की इच्छा न हो, तब तक मुक्ति की ओर प्रवृत्ति नहीं हो सकती. जगत् के विषय में रमण करने वाले की दशा वैसी ही होती है, जैसी पिंजड़े में बन्द तोते की. यदि किसी तरह तोते को यह मालूम हो जाय कि पिंजड़ा उसके लिए बन्धन रूप है तो खिड़की खुलते ही वह आकाश में उड़ जायगा. उसी प्रकार जीव भी जगत् में रमण करता हुआ जीवन समाप्त कर देता है; परन्तु जब उसे यह निश्चितरूप से मालूम हो जायगा कि जगत् उसके लिए एक बन्धन है तो अवसर पाते ही वह तत्काल निर्बन्ध दशा की ओर—मुक्ति दिशा की ओर प्रस्थान कर देगा.

जगत् में जागते रहने के लिए जीवन मिला है, सोते रहने के लिए नहीं. जगत् की कोई वस्तु जीव से चिपकने वाली नहीं है. जीव स्वयं ही जगत् से चिपकता है. अज्ञान छूटने पर नहीं चिपकता. धर्मज्ञान से ही अज्ञान छूट सकता है.

चित्त की चंचलता समाप्त हुए बिना गुरुता या स्थिरता प्राप्त नहीं हो सकती. स्थिर चित्त में जो आनन्दानुभूति होती है, वह

है. मनुष्य की जो विशेषता है, उसे टिकाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है.

जो जीव कर्म से सन्त्रस्त हो जाता है, वह धर्म की शरण में आता है :—

"धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमम् ॥"

धर्म एक द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और है उत्तम शरण.

धर्मात्मा गुणदर्शी होता है, दोषदर्शी नहीं. दोषदर्शी सुगन्धित गुलाव के पौधे में काँटे देखेगा और गुणदर्शी काँटेदार गुलाव के पौधे में भी सौन्दर्य और सुगन्ध देखेगा. कितना अन्तर है—दोनों के दृष्टिकोण में ?

धर्मात्मा संयम का अभ्यास करता है. पाँच इन्द्रियों मेंसे जीभ ही ऐसी है, जो स्वाद लेने और वोलने के दो काम करती है; इसलिए सवसे पहले उसी को वश में करने का प्रयत्न करता है. स्वाद में संयम न रहने पर शरीर रोगी वन जाता है और वोलने में संयम न रहने पर आपत्तियों से मनुष्य घिर जाता है. वोलती है जीभ, पर जूते वेचारे मस्तक को खाने पड़ते हैं :—

'रहिमन' जिह्वा वावरी,
कहिगै सरग-पतार ।
आपु तो कहि भीतर रही,
जूती खात कपार ॥

अपराध करने पर हम जो क्षमायाचना करते हैं, वह भी जीभ से ही करते हैं. गाली भी जीभ से देते हैं और गुणों की

विशुद्ध होती है. उसमें न आसक्ति का स्पर्श होता है। न अनुरक्ति का. धार्मिक क्रियाओं से चित्त को स्थिर किया जा सकता है.

क्रियाएं धर्म की प्राप्ति के लिए की जाती हैं; किन्तु भ्रम से लोग क्रियाओं को ही धर्म मान बैठते हैं—साधनों को ही साध्य समझ लेते हैं—कारणों में ही कार्य का सन्तोष कर लेते हैं. इस इस प्रकार की क्रियाओ तक ही अपने को सीमित रखकर वे उनसे आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते. फलस्वरुप उनका जीवन असफल हो जाता है.

रहस्य समझकर क्रिया करने वाला ही धर्म का पूरा लाभ उठा सकता है जिसने धर्म का महत्त्व जान लिया, वही उसके मर्म को जान सकता है. धर्म का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि वह पशु से मनुष्य को अलग करता है :—

आहारनिद्राभयमैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

यह एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है. इसमें बताया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य खाते हैं, सोते हैं, डरते हैं, सम्भोग करते हैं (बच्चे पैदा करते हैं) उसी प्रकार पशु भी करते हैं; परन्तु मनुष्य धर्म भी करते हैं—परोपकार के कार्य भी करते हैं—यही पशुओं से उनमें एक विशेषता अधिक है. इस लिए जो लोग धर्माचरण नहीं करते, वे पशुओं के ही समान हैं.

पशुओं से हमें जो तत्त्व अलग करने वाला है, वह धर्म है; इसलिए सभी मनुष्यों के लिए उसका पालन अनिवार्य आवश्यक

है. मनुष्य की जो विशेषता है, उसे टिकाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है.

जो जीव कर्म से सन्त्रस्त हो जाता है, वह धर्म की शरण में आता है :—

"धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमम् ॥"

धर्म एक द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और है उत्तम शरण.

धर्मात्मा गुणदर्शी होता है, दोषदर्शी नहीं. दोषदर्शी सुगन्धित गुलाब के पौधे में काँटे देखेगा और गुणदर्शी काँटेदार गुलाब के पौधे में भी सौन्दर्य और सुगन्ध देखेगा. कितना अन्तर है—दोनों के दृष्टिकोण में ?

धर्मात्मा संयम का अभ्यास करता है. पाँच इन्द्रियों मेंसे जीभ ही ऐसी है, जो स्वाद लेने और बोलने के दो काम करती है; इसलिए सबसे पहले उसी को वश में करने का प्रयत्न करता है. स्वाद में संयम न रहने पर शरीर रोगी बन जाता है और बोलने में संयम न रहने पर आपत्तियों से मनुष्य घिर जाता है. बोलती है जीभ, पर जूते बेचारे मस्तक को खाने पड़ते हैं :—

'रहिमन' जिह्वा बावरी,
कहिगै सरग-पताल ।
आपु तो कहि भीतर रही,
जूती खात कपार ॥

अपराध करने पर हम जो क्षमायाचना करते हैं, वह भी जीभ से ही करते हैं. गाली भी जीभ से देते हैं और गुणों की

[illegible] होते हैं [illegible] [illegible] रिक का, धार्मिक क्रियाओं में [illegible] किया जा सकता है.

क्रियाएं धर्म की प्राप्ति के लिए की जाती हैं; किन्तु भ्रम में लोग क्रियाओं को ही धर्म मान लेते हैं—साधनों को ही साध्य समझ लेते हैं—कारणों में ही कार्य का सन्तोष कर लेते हैं. इस इस प्रकार की क्रियाओं तक ही अपने को सीमित रख कर वे उनसे आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते फलस्वरूप उनका जीवन असफल हो जाता है.

रहस्य समझकर क्रिया करने वाला ही धर्म का पूरा लाभ उठा सकता है जिसने धर्म का महत्त्व जान लिया, वही उसके मर्म को जान सकता है. धर्म का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि वह पशु से मनुष्य को अलग करता है :—

> आहारनिद्राभयमैथुनं च,
> सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
> धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

यह एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है. इसमें बताया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य खाते हैं, सोते हैं, डरते हैं, सम्भोग करते हैं (बच्चे पैदा करते हैं) उसी प्रकार पशु भी करते हैं; परन्तु मनुष्य धर्म भी करते हैं—परोपकार के कार्य भी करते हैं—यही पशुओं से उनमें एक विशेषता अधिक है. इस लिए जो लोग धर्माचरण नहीं करते, वे पशुओं के ही समान हैं.

पशुओं से हमें जो तत्त्व अलग करने वाला है, वह धर्म है; इसलिए सभी मनुष्यों के लिए उसका पालन अनिवार्य आवश्यक

है. मनुष्य की जो विशेषता है, उसे टिकाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है.

जो जीव कर्म से सन्त्रस्त हो जाता है, वह धर्म की शरण में आता है :—

"धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमम् ॥"

धर्म एक द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और है उत्तम शरण.

धर्मात्मा गुणदर्शी होता है, दोषदर्शी नहीं. दोषदर्शी सुगन्धित गुलाब के पौधे में काँटे देखेगा और गुणदर्शी काँटेदार गुलाब के पौधे में भी सौन्दर्य और सुगन्ध देखेगा. कितना अन्तर है—दोनों के दृष्टिकोण में ?

धर्मात्मा संयम का अभ्यास करता है. पाँच इन्द्रियों मेंसे जीभ ही ऐसी है, जो स्वाद लेने और बोलने के दो काम करती है; इसलिए सबसे पहले उसी को वश में करने का प्रयत्न करता है. स्वाद में संयम न रहने पर शरीर रोगी बन जाता है और बोलने में संयम न रहने पर आपत्तियों से मनुष्य घिर जाता है. बोलती है जीभ, पर जूते बेचारे मस्तक को खाने पड़ते हैं :—

'रहिमन' जिह्वा बावरी,
कहिगै सरग-पतार ।
आपु तो कहि भीतर रही,
जूती खात कपार ॥

अपराध करने पर हम जो क्षमायाचना करते हैं, वह भी जीभ से ही करते हैं. गाली भी जीभ से देते हैं और गुणों की

विशुद्ध होती है. इसमें न आत्मोन्नति का त्याग होता है और न नि-
रति का. धार्मिक क्रियाओं से चित्त को स्थिर किया जा सकता है.

क्रियाएं धर्म की प्राप्ति के लिए की जाती हैं; किन्तु भ्रम से लोग क्रियाओं को ही धर्म मान लेते हैं—साधनों को ही साध्य समझ लेते हैं—कारणों से ही कार्य का सन्तोष कर लेते हैं. वे इस प्रकार की क्रियाओं तक ही अपने को सीमित रख कर के उनसे आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते. फलस्वरूप उनका जीवन असफल हो जाता है.

रहस्य समझकर क्रिया करने वाला ही धर्म का पूरा लाभ उठा सकता है जिसने धर्म का महत्त्व जान लिया, वही उसके मर्म को जान सकता है. धर्म का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि वह पशु से मनुष्य को अलग करता है :—

> आहारनिद्राभयमैथुनं च,
> सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
> धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

यह एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है. इसमें बताया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य खाते हैं, सोते हैं, डरते हैं, सम्भोग करते हैं (बच्चे पैदा करते हैं) उसी प्रकार पशु भी करते हैं; परन्तु मनुष्य धर्म भी करते हैं—परोपकार के कार्य भी करते हैं—यही पशुओं से उनमें एक विशेषता अधिक है. इस लिए जो लोग धर्माचरण नहीं करते, वे पशुओं के ही समान हैं.

पशुओं से हमें जो तत्त्व अलग करने वाला है, वह
इसलिए सभी मनुष्यों के लिए उसका पालन अनिवा-

युद्ध क्षेत्र में उतरा. इस पर भी वीर उदयन ने हिम्मत नहीं छोड़ी और कुशलता पूर्वक हाथी को घायल करके उसे मैदान में सुला दिया. फिर चण्डप्रद्योत के निकट पहुँचा तो उसने कहा कि मैं दासी का पुत्र हूं. मैं आपके वल से परिचित नहीं थ; इसीलिये युद्ध छेड़ वैठा. खैर, अव आप मुझे क्षमा कर दीजिये और प्राणों की भीख दीजिये.

उदयन ने उसे जान से नहीं मारा; किन्तु लकड़े के एक पिजड़े में उसे कैद करके अपने सैनिकों के साथ अपने राज्य की ओर चल पड़ा. वह जो कुछ खाता था, वही चण्डप्रद्योत को खिलाया जाता था.

चलते-चलते रास्ते में दशपुर नगर (मन्दसौर) आया. उस दिन पर्युषण का आठवाँ ही दिन था अर्थात् सवसे वड़ा सॅव्वत्सरी पर्व था. उसकी आराधना के लिए वे वहीं ठहर गये. चण्डप्रद्योत के पिजड़े को दस राजाओं द्वारा वनवाये गये मिट्टी के दस मजवूत परकोटों के भीतर सुरक्षित रूप से रखवा दिया गया.

प्रतिदिन तो रसोई महाराजा उदयन की इच्छा अनुसार वन जाती थी; किन्तु उस दिन सॅव्वतसरी का अनशन (उपवास) होने से महाराज उदयन ने रसोइये से कह दिया कि आज चण्डप्रद्योत से ही पूछ लेना कि वह क्या खाना चाहता है. वह जैसा कहे, वैसा भोजन उसके लिए वना देना.

रसोइया आदेश के अनुसार पिंजड़े के पास पहुंचा और चण्ड प्रद्योत से पूछा:—आप कैसी रसोई खाना पसंद करेंगे? वताइये आज महाराज को कुछ नहीं खाना है; क्योंकि उन्होंने

प्रशंसा भी जीभ से ही करते हैं. धर्मात्मा जीभ का सदा सदुपयोग ही करते हैं, पर-निन्दा के द्वारा उसका दुरुपयोग नहीं करते.

जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कराने के ही लिए प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व आता है. आज उसका आठवाँ दिन है. आज ही वर्षभर में सबसे बड़ा प्रतिक्रमण किया जाता है, जिसे सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण कहते हैं. जैन परिवार का प्रत्येक सदस्य आज अनशन (उपवास) तप करता है. राग की लालिमा और द्वेष की कालिमा धोने के लिए ही वीतराग देव के दर्शन करता है, पूजन करता है. पूज्य की पूजा करने वाला स्वयं पूज्य बन जाता है.

छलसे भी यदि दीपक की लौ पर उंगली रख दी जाय तो वह जलायगी ही; उसी प्रकार छल से भी यदि कोई धर्म किया करे तो उसे लाभ किस प्रकार मिलता है--इस की एक शास्त्रीय कथा सुनिये :—

वीतमयपत्तन के महाराज उदयन जैन धर्म के अनुयायी थे. उज्जैन नरेश चण्डप्रद्योत एक बार पिछली रात में वहां से जीवित स्वामी (भगवान महावीर) की स्वर्ण प्रतिमा चुरा ले गया. उसे पुनः प्राप्त करने के लिए महाराजा उदयन ने उज्जैन पर आक्रमण कर दिया. उधर चण्डप्रद्योत भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को उत्सुक था; परन्तु महाराज उदयन ने प्रस्ताव भेजा कि यदि हमें शक्ति परीक्षण ही करना है तो द्वन्द्व युद्ध कर लें — दोनों ओर के निर्दोष सैनिकों को मारने से क्या लाभ ? चण्डप्रद्योत ने प्रस्ताव स्वीकृत करते हुए कहा कि ठीक है—हम दोनों रथ में बैठकर द्वन्द्व युद्ध करेंगे.

उदयन इस शर्त के अनुसार रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आया; परन्तु चण्डप्रद्योत शर्त के विपरीत हाथी पर बैठकर

उस पर लगा हुआ दासी पुत्र का कलंक सदा के लिए मिटाकर उसे उसका राज्य पुनः सौंपने की घोषणा करते हुए प्रेम और हर्ष के साथ उज्जैन की ओर विदा किया.

चण्डप्रद्योत की तरह अनजान में या छल से यदि धर्म क्रिया का पालन हो जाय तो भी उससे जब इतना बड़ा लाभ मिल सकता है, तब यदि जानबूझकर निश्छल भाव से निष्काम होकर क्रियाएं की जायँ तो उनसे कैसा और कितना अधिक धर्मलाभ मिल सकता है—इसकी हम कल्पना कर सकते हैं.

विवेकपूर्वक सविधि अनुष्ठान किया जाय, तब अधिक से अधिक धर्मलाभ प्राप्त हो सकता है; अन्यथा बहुत थोड़ा होता है. इत्यलम्.

दूसरे दिन प्रातः जब महाराज ने रसोइये से पूछा:—"क्या चण्डप्रद्योत के लिए रसोई की ठीक व्यवस्था हो गई थी?" तब रसोइये ने कहा:—"महाराज! उसने कहा कि मेरा भी आज संवत्सरी का उपवास है, इसलिए कुछ भी बनाने की जरूरत नहीं."

यह सुनकर महाराज उदयन बहुत विचार में पड़ गये. जो संवत्सरी का उपवास करता है, वह जैन है. जो जैन है, वह धर्म बन्धु है, उसे कैद में कैसे रखा जा सकता है? दास (गुलाम) कैसे बनाया जा सकता है? उनके मुह से सहसा ये उद्गार प्रकट हुए:—

"संव्वतरी सुपर्व का
यदि उसको उपवास।
तो वह मेरा बन्धु है,
भला क्यों रहे दास?"

इस उद्गार के अनुसार उसे कैद से छुड़ा कर, बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सजाकर, उसके ललाट पर स्वर्णपट्ट लगवाकर

उस पर लगा हुआ दासी पुत्र का कलंक सदा के लिए मिटाकर उसे उसका राज्य पुनः सौंपने की घोषणा करते हुए प्रेम और हर्ष के साथ उज्जैन की ओर विदा किया.

चण्डप्रद्योत की तरह अनजान में या छल से यदि धर्म क्रिया का पालन हो जाय तो भी उससे जब इतना बड़ा लाभ मिल सकता है, तब यदि जानबूझकर निश्छल भाव से निष्काम होकर क्रियाएं की जायें तो उनसे कैसा और कितना अधिक धनलाभ मिल सकता है—इसकी हम कल्पना कर सकते हैं.

विवेकपूर्वक सविधि अनुष्ठान किया जाय, तब अधिक से अधिक धर्मलाभ प्राप्त हो सकता है; अन्यथा बहुत थोड़ा प्राप्त होता है. इत्यलम्.

संव्वत्सरी का उपवास किया है. अतः आपकी जैसी भी खाने की इच्छा होगी, वैसी ही व्यवस्था कर दी जायगी."

चण्डप्रद्योत जैन नहीं था, न वह पर्युषण या संव्वत्सरी का महत्व ही समझता था; फिर भी उसे आशंका हुई कि कहीं रसोई में जहर न मिला दिया जाय—इसलिए उसने भी रसोइये से झूठ-मूठ ही कह दिया:—"यदि महाराज को संव्वत्सरी का उपवास है तो मुझे भी उपवास है; इसलिए मेरे लिए भी रसोई न बनाई जाय."

दूसरे दिन प्रातः जब महाराज ने रसोइये से पूछा:—"क्या चण्डप्रद्योत के लिए रसोई की ठीक व्यवस्था हो गई थी?" तब रसोइये ने कहा:—"महाराज! उसने कहा कि मेरा भी आज सँव्वत्सरी का उपवास है; इसलिए कुछ भी बनाने की जरूरत नहीं."

यह सुनकर महाराज उदय न बहुत विचार में पड़ गये. जो सँव्वत्सरी का उपवास करता है, वह जैन है. जो जैन है, वह धर्म बन्धु है, उसे कैद में कैसे रखा जा सकता है? दास (गुलाम) कैसे बनाया जा सकता है? उनके मुंह से सहसा ये उद्गार प्रकट हुए:—

"सँव्वतरी सुपर्व का
यदि उसको उपवास।
तो वह मेरा बन्धु है,
भला क्यों रहे दास?"

इस उद्गार के अनुसार उसे कैद से छुड़ा कर; बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सजाकर; उसके ललाट पर स्वर्णपट्ट लगवाकर

पंचमी तप स्तवन

[आवो आवो पासजी मुझ मलियारे...राग]

अनुपम पंचमी तप कीजे रे, सिद्धि साधक तत्त्व धरीजे अनुप
भवि ज्ञान आराधना कीजे रे, मिथ्याज्ञान को दूर करीजे रे,
ज्ञान ज्योति अखूट वरीजे, अनुपम पंचमी० १

नन्दी सूत्र में भेद बताया रे, मतिश्रुत अवधि मन पर्याया रे,
केवल ज्ञान है शुद्ध कहाया, अनुपम पंचमी० २

मति भेद अट्टाइस भाया रे, उत्तर तीन सौ चालीस आया
श्रुत चौदह प्रकार दिखाया. अनुपम पंचमी० ३

अवधि भेद असंख्य प्रकार रे, भव गुण प्रत्यय सुरनर रे,
केवल अकलंक एक उदार, अनुपम पंचमी० ४

अजित धर्म अनन्त जिणंदा रे, कल्याणक मोक्ष दिणंदा रे,
संभव केवल च्यवन जिनचन्दा, अनुपम पंचमी० ५

जन्म सुविधि शिवादेवी जाया रे, कुन्थुनाथजी दीक्षा पाय
तिथि पंचमी ज्ञानदेवी प्रदाया, अनुपम पंचमी० ६

सूरि राजेन्द्र सद्गुरु राया रे, सूरियतीन्द्रचरण दिलाया रे
विद्याचन्द्र जयन्तने गाया, अनुपम पंचमी० ७

पंचमी तप स्तवन

[आओ आवो पासजी मुझ मलियारे...राग]

अनुपम पंचमी तप कीजे रे, सिद्धि साधक तत्त्व वरीजे अनुपम०
भाव ज्ञान आराधना कीजे रे, मिथ्याज्ञान को दूर करीजे रे,
ज्ञान ज्योति अखूट वरीजे, अनुपम पंचमी० १
नन्दी सूत्र में भेद बताया रे, मतिश्रुत अवधि मन पर्याया रे,
केवल ज्ञान है शुद्ध कहाया, अनुपम पंचमी० २
मति भेद अट्ठाइस भाया रे, उत्तर तीन सौ चालीस आया रे,
श्रुत चौदह प्रकार दिखाया, अनुपम पंचमी० ३
अवधि भेद असंख्य प्रकार रे, भव गुण प्रत्यय सुरनर रे,
केवल अकलंक एक उदार, अनुपम पंचमी० ४
अजित धर्म अनन्त जिणंदा रे, कल्याणक मोक्ष दिणंदा रे,
संभव केवल च्यवन जिनचन्दा, अनुपम पंचमी० ५
जन्म सुविधि शिवादेवी जाया रे, कुन्थुनाथजी दीक्षा पाया रे,
तिथि पंचमी ज्ञानदेवी प्रदाया, अनुपम पंचमी० ६
सूरि राजेन्द्र सद्गुरु राया रे, सूरियतीन्द्रचरण दिलाया रे,
विद्याचन्द्र जयन्तने गाया, अनुपम पंचमी० ७

परम ज्ञानी परमात्मा ने अपने दिव्य उपदेश द्वारा ज्ञान पथ का प्रदर्शन करते हुए फर्माया कि—

"पढमं णाणं"

लक्ष्य बनाने के बाद मार्ग का ज्ञान नहीं तो राहगीर प्रवासी भी अपने लक्ष्यलक्षित स्थान को कैसे पा सकता है ? मूल्यवान मानव के भव को पाने के बाद में यदि इस से लाभ नहीं उठाया जा सका तो फिर उस अज्ञानी की भांति जीवन भारभूत है जिस को पवृत्ति करते हुए भी अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं है। चक्कर लगाने की प्रवृत्ति तो होती है किन्तु ज्ञान के अभाव में सब बेसमझ की तरह ही होता है।

भौतिक पवन लहरियाँ सर्वत्र फैल रही है, शिक्षा का प्रचार अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालयों के द्वारा किया जा रहा है तथापि अनैतिकता प्रवर्द्धक लहरें मानवीय आत्म सत्तात्मक आध्यात्मिक धन का अपहरण किये जा रहे हैं।

ज्ञान पंचमी का यह पर्व हमें अपने अन्तर मन्दिर को ज्ञान प्रदीप से आलोकित करने का महत्वपूर्ण दर्शन कराता है।

अज्ञान का आवरण एवं ज्ञान प्राप्ति के साधक तत्त्वों की स्थिति का पृथक्करण करने के लिये हमें ज्ञान पंचमी का दिन प्रेरित करता है।

सुखद स्थिति का अनुभव ज्ञान से होता है वही अनुभव आत्मिक प्रगति का परिचायक भी है।

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से सारा संसार, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय सत्यासत्य, तत्त्वातत्त्व, कृत्याकृत्य एवं सम्यग् मिथ्या

के भेद को आत्मा जान नहीं पाती अतएव इस की प्रवृत्ति विपरीत दिशा की रहती है।

सम्यग् ज्ञान की समुपलब्धि से ही व्यक्ति में धीरता, वीरता और गंभीरता का प्रादुर्भाव, संरक्षण एवं संवर्धन होता रहता है।

ज्ञान एवं ज्ञानी की भक्ति; उपासन एवं श्रद्धा पुरस्सर वंदना, अर्चना में मस्तिष्क को स्वस्थ एवं सबल बनाने का सामर्थ्य है। ज्ञान एवं ज्ञानी की आशातना, विराधना एवं उपहास विविध रूपों में प्रकट हो सकता है।

मूकता, बधीरता, रुग्णता और अंगोपांग हीनता आदि अनेक दृष्टान्त संसार के रंगमंच पर देखने को मिल सकते है जो कि ज्ञान एवं ज्ञानी की उपेक्षा, अभाव का ही प्रतिफल है।

वरदत्त गुणमंजरी का वह दृष्टान्त हमारे सामने प्रस्तुत है।

बड़े भाई को मुनि अवस्था में ज्ञान रहित होने से आरामी है मैं ही व्यर्थ में अध्ययन करने से एक घटिका मात्र भी शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। मुझे भी इस प्रकार कष्ट क्यों सहना ? ऐसी मनोभावना ने ज्ञान के प्रति उपेक्षा बढ़ा दी, परिणाम स्वरुप वरदत्त के भव में कुष्ट रोग से ग्रस्त देह पाई।

संतान के लाड प्यार में आसक्त माता ने ज्ञान के उपकरण जलती भट्टी में डालकर जला दिये किन्तु उसी माता को गुण-मजरी के भव में मूकता को लिये जन्म लेना पड़ा।

ज्ञान के प्रति अभिरुचि एवं आदर के साथ ग्रहण करने के लिए तत्पर रहना ही आत्मोन्नति का परिचायक है। ज्ञान जीवन विकासक दिवाकर है, उसके प्रभाव से आन्तर् जागृति सहज हो सकती है।

विशुद्ध होती है. उसमें न आसक्ति का स्पर्श होता है। न अनुरक्ति का. धार्मिक क्रियाओं से चित्त को स्थिर किया जा सकता है.

क्रियाएं धर्म की प्राप्ति के लिए की जाती हैं; किन्तु भ्रम से लोग क्रियाओं को ही धर्म मान बैठते हैं—साधनों को ही साध्य समझ लेते हैं—कारणों में ही कार्य का सन्तोष कर लेते हैं. इस इस प्रकार की क्रियाओ तक ही अपने को सीमित रखकर वे उनसे आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते. फलस्वरुप उनका जीवन असफल हो जाता है.

रहस्य समझकर क्रिया करने वाला ही धर्म का पूरा लाभ उठा सकता है जिसने धर्म का महत्त्व जान लिया, वही उसके मर्म को जान सकता है. धर्म का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि वह पशु से मनुष्य को अलग करता है :—

> आहारनिद्राभयमैथुनं च,
> सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
> धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

यह एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है. इसमें बताया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य खाते हैं, सोते हैं, डरते हैं, सम्भोग करते हैं (बच्चे पैदा करते हैं) उसी प्रकार पशु भी करते हैं; परन्तु मनुष्य धर्म भी करते हैं—परोपकार के कार्य भी करते हैं—यही पशुओं से उनमें एक विशेषता अधिक है. इस लिए जो लोग धर्माचरण नहीं करते, वे पशुओं के ही समान हैं.

पशुओं से हमें जो तत्त्व अलग करने वाला है, वह धर्म है; इसलिए सभी मनुष्यों के लिए उसका पालन अनिवार्य आवश्यक

है. मनुष्य की जो विशेषता है, उसे टिकाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है.

जो जीव कर्म से सन्त्रस्त हो जाता है, वह धर्म की शरण में आता है :—

"धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमम् ॥"

धर्म एक द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और है उत्तम शरण.

धर्मात्मा गुणदर्शी होता है, दोषदर्शी नहीं. दोषदर्शी सुगन्धित गुलाव के पौधे में काँटे देखेगा और गुणदर्शी काँटेदार गुलाव के पौधे में भी सौन्दर्य और सुगन्ध देखेगा. कितना अन्तर है—दोनों के दृष्टिकोण में ?

धर्मात्मा संयम का अभ्यास करता है. पाँच इन्द्रियों मेंसे जीभ ही ऐसी है, जो स्वाद लेने और वोलने के दो काम करती है; इसलिए सवसे पहले उसी को वश में करने का प्रयत्न करता है. स्वाद में संयम न रहने पर शरीर रोगी वन जाता है और वोलने में संयम न रहने पर आपत्तियों से मनुष्य घिर जाता है. वोलती है जीभ, पर जूते वेचारे मस्तक को खाने पड़ते हैं :—

'रहिमन' जिह्वा बावरी,
कहिगै सरग-पतार ।
आपु तो कहि भीतर रही,
जूती खात कपार ॥

अपराध करने पर हम जो क्षमायाचना करते हैं, वह भी जीभ से ही करते हैं. गाली भी जीभ से देते हैं और गुणों की

प्रशंसा भी जीभ से ही करते हैं. धर्मात्मा जीभ का सदा सदुपयोग ही करते हैं, पर-निन्दा के द्वारा उसका दुरुपयोग नहीं करते.

जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कराने के ही लिए प्रतिवर्ष पर्यु-षण पर्व आता है. आज उसका आठवां दिन है. आज ही सालभर में सबसे बड़ा प्रतिक्रमण किया जाता है, जिसे सांवत्सरिक-प्रति-क्रमण कहते हैं. जैन परिवार का प्रत्येक सदस्य आज अनशन (उपवास) तप करता है. राग की लालिमा और द्वेष की कालिमा धोने के लिए ही वीतराग देव के दर्शन करता है, पूजन करता है. पूज्य की पूजा करने वाला स्वयं पूज्य बन जाता है.

छलसे भी यदि दीपक की लौ पर उंगली रख दी जाय तो वह जलायगी ही; उसी प्रकार छल से भी यदि कोई धर्म किया करे तो उसे लाभ किस प्रकार मिलता है—इस की एक शास्त्रीय कथा सुनिये :—

वीतभयपत्तन के महाराज उदयन जैन धर्म के अनुयायी थे. उज्जैन नरेश चण्डप्रद्योत एक बार पिछली रात में वहां से जीवित स्वामी (भगवान महावीर) की स्वर्ण प्रतिमा चुरा ले गया. उसे पुनः प्राप्त करने के लिए महाराजा उदयन ने उज्जैन पर आक्रमण कर दिया. उधर चण्डप्रद्योत भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को उत्सुक था; परन्तु महाराज उदयन ने प्रस्ताव भेजा कि यदि हमें शक्ति परीक्षण ही करना है तो द्वन्द्व युद्ध कर लें—दोनों ओर के निर्दोष सैनिकों को मारने से क्या लाभ ? चण्ड-प्रद्योत ने प्रस्ताव स्वीकृत करते हुए कहा कि ठीक है—हम दोनों रथ में बैठकर द्वन्द्व युद्ध करेंगे.

उदयन इस शर्त के अनुसार रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आया; परन्तु चण्डप्रद्योत शर्त के विपरीत हाथी पर बैठकर

उस पर लगा हुआ दासी पुत्र का कलंक सदा के लिए मिटाकर उसे उसका राज्य पुनः सौंपने की घोषणा करते हुए प्रेम और हर्ष के साथ उज्जैन की ओर विदा किया.

चण्डप्रद्योत की तरह अनजान में या छल से यदि धर्म क्रिया का पालन हो जाय तो भी उससे जब इतना बड़ा लाभ मिल सकता है, तब यदि जानबूझकर निश्छल भाव से निष्काम होकर क्रियाएं की जायं तो उनसे कैसा और कितना अधिक धर्मलाभ मिल सकता है—इसकी हम कल्पना कर सकते हैं.

विवेकपूर्वक सविधि अनुष्ठान किया जाय, तब अधिक से अधिक धर्मलाभ प्राप्त हो सकता है; अन्यथा बहुत थोड़ा प्राप्त होता है. इत्यलम्.

पंचमी तप स्तवन

[आवो आवो पासजी मुझ मलियारे...राग]

अनुपम पंचमी तप कीजे रे, सिद्धि साधक तत्त्व धरीजे अनुपम०
भवि ज्ञान आराधना कीजे रे, मिथ्याज्ञान को दूर करीजे रे,
ज्ञान ज्योति अखूट वरीजे, अनुपम पंचमी० १
नन्दी सूत्र में भेद बताया रे, मतिश्रुत अवधि मन पर्याया रे,
केवल ज्ञान है शुद्ध कहाया, अनुपम पंचमी० २
मति भेद अट्ठाइस भाया रे, उत्तर तीन सौ चालीस आया रे,
श्रुत चौदह प्रकार दिखाया, अनुपम पंचमी० ३
अवधि भेद असंख्य प्रकार रे, भव गुण प्रत्यय सुरनर रे,
केवल अकलंक एक उदार, अनुपम पंचमी० ४
अजित धर्म अनन्त जिणंदा रे, कल्याणक मोक्ष दिणंदा रे,
संभव केवल च्यवन जिनचन्दा, अनुपम पंचमी० ५
जन्म सुविधि शिवादेवी जाया रे, कुन्थुनाथजी दीक्षा पाया रे,
तिथि पंचमी ज्ञानदेवी प्रदाया, अनुपम पंचमी० ६
सूरि राजेन्द्र सद्गुरु राया रे, सूरियतीन्द्रचरण दिलाया रे,
विद्याचन्द्र जयन्तने गाया, अनुपम पंचमी० ७

अष्टमी तिथि स्तवन

[मनड़ किम ही न बाजे हो कुंथुजिन !……राग]

अष्टमी तिथि आराधो रे सुगुणा अष्टमी तिथि आराधो ।
अडसिद्धी वर अडगुण पाकर, मनवांछित फल साधो रे, सुगुणा०
मन वच काया शुद्ध आराधना, साधी भव दुःखहारी ।
अडवृद्धि शुभ धारक चेतन, होवे भव जल पारी रे, सुगुणा०
जन्म ऋषभजिन दीक्षाधारी, जन्म अजित जिनराया:
च्यवन सम्भव मोक्ष कल्याणक, अभिनन्दन शिव पाया रे, सुगुणा०
सुमति जन्म सुपार्श्व च्यवन है, मुनिसुव्रत शिवगामी ।
जन्म नमि जिन सिद्धा नेमि, तारक वर अभिरामी रे, सुगुणा०
अगम अगोचर अकल कला धर, पार्श्व प्रभु शिववरिया ।
आराधक आराधन करके, दंडवीर्य भव तरिया रे, सुगुणा०
अष्ट कर्म क्षय करके आतम, अविचल पद शुभ पावे,
आठों मद को दूर हटा कर, निजगुण भोगी थावे रे, सुगुणा०
वीर जिनेश्वर गोयम आगे, तप महिमा बतलाई,
नरपति श्रेणिक आदि सुरनर, जिनवाणी मन भाई रे, सुगुणा०
सूरीश्वर राजेन्द्र दयाला सूरियतीन्द्र सवाई,
तस पद पंकज जयन्त मधुकर, अष्टमी तिथि को गाई रे, सुगुणा०

ज्ञान की महत्ता

ज्ञान दीपक है, ज्ञान दृष्टि है और ज्ञान आत्मिक विकास का श्रेष्ठतम साधन है। ज्ञान सम्यग् न हो तो मिथ्या बनता है। मिथ्या ज्ञान भ्रमात्मक होता है, ज्ञानाभास होता है।

सम्यग् ज्ञान समता की वृद्धि करता है और ममता की हानि मिथ्याज्ञान मोह, ममत्व एवं अहंत्व का उत्पादक बन कर आत्मोन्नति में प्रतिबंधक होता है। सम्यग् ज्ञान सम्यक्त्वधारक आत्मा की धर्मसत्ताविशोधक और वास्तविक निधि एवं धरोहर है जब कि मिथ्या ज्ञान कर्मसत्ता का पोषक और संसार की धरोहर है।

सम्यग् ज्ञान की वृद्धि ज्यों २ होती जाती है त्यों २ आन्तर् जगत् प्रकाशमय बन कर अंधकार से आत्मा को मुक्ति प्रदायक बनता है।

ज्ञान के बढ़ने पर क्षमा. सरलता, नम्रता, निर्लोभता आदि सद्गुणों की वर्द्धमानता होती रहती है, मिथ्याज्ञान का जितनी मात्रा में प्रभाव अधिक होता है उतनी ही कषायों की प्रबलता रहती है।

वह सघन आम्रवृक्ष जब फलों से फलित एवं पत्र मंजरी से लवित होता है तो स्वतः नम्र बनकर सरल हो जाता है, जबकि री ओर वह अर्कवृक्ष ताड़वृक्ष अपनी हीनता का परिचय । देता ही है।

परम ज्ञानी परमात्मा ने अपने दिव्य उपदेश द्वारा ज्ञान पथ का प्रदर्शन करते हुए फर्माया कि—

"पढमं णाणं"

लक्ष्य बनाने के बाद मार्ग का ज्ञान नहीं तो राहगीर प्रवासी भी अपने लक्ष्यलक्षित स्थान को कैसे पा सकता है? मूल्यवान मानव के भव को पाने के बाद में यदि उस से लाभ नहीं उठाया जा सका तो फिर उस अज्ञानी की भांति जीवन भारभूत है जिस को प्रवृत्ति करते हुए भी अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं है। चक्कर लगाने की प्रवृत्ति तो होती है किन्तु ज्ञान के अभाव में सब बेसमझ की तरह ही होता है।

भौतिक पवन लहरियाँ सर्वत्र फैल रही है, शिक्षा का प्रचार अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालयों के द्वारा किया जा रहा है तथापि अनैतिकता प्रवर्द्धक लहर मानवीय आत्म सत्तात्मक आध्यात्मिक धन का अपहरण किये जा रहे है।

ज्ञान पंचमी का यह पर्व हमें अपने अन्तर मन्दिर को ज्ञान प्रदीप से आलोकित करने का महत्वपूर्ण दर्शन कराता है।

अज्ञान का आवरण एवं ज्ञान प्राप्ति के साधक तत्त्वों की स्थिति का पृथक्करण करने के लिये हमें ज्ञान पंचमी का दिन प्रेरित करता है।

सुखद स्थिति का अनुभव ज्ञान से होता है वही अनुभव आत्मिक प्रगति का परिचायक भी है।

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से सारा संसार, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय सत्यासत्य, तत्त्वातत्त्व, कृत्याकृत्य एवं सम्यग् मिथ्या

के भेद को आत्मा जान नहीं पाती अतएव इस की प्रवृत्ति विपरीत दिशा की रहती है।

सम्यग् ज्ञान की समुपलब्धि से ही व्यक्ति में धीरता, वीरता और गंभीरता का प्रादुर्भाव, संरक्षण एवं संवर्धन होता रहता है।

ज्ञान एवं ज्ञानी की भक्ति; उपासन एवं श्रद्धा पुरस्सर वंदना, अर्चना में मस्तिष्क को स्वस्थ एवं सबल बनाने का सामर्थ्य है। ज्ञान एवं ज्ञानी की आशातना, विराधना एवं उपहास विविध रूपों में प्रकट हो सकता है।

मूकता, बधीरता, रुग्णता और अंगोपांग हीनता आदि अनेक दृष्टान्त संसार के रंगमंच पर देखने को मिल सकते है जो कि ज्ञान एवं ज्ञानी की उपेक्षा, अभाव का ही प्रतिफल हैं।

वरदत्त गुणमंजरी का यह दृष्टान्त हमारे सामने प्रस्तुत है।

बड़े भाई को मुनि अवस्था में ज्ञान रहित होने से आरामी है मैं ही व्यर्थ में अध्ययन करने से एक घटिका मात्र भी शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। मुझे भी इस प्रकार कष्ट क्यों सहना ? ऐसी मनोभावना ने ज्ञान के प्रति उपेक्षा बढ़ा दी, परिणाम स्वरुप वरदत्त के भव में कुष्ट रोग से ग्रस्त देह पाई।

संतान के लाड प्यार में आसक्त माता ने ज्ञान के उपकरण जलती भट्टी में डालकर जला दिये किन्तु उसी माता को गुण-मंजरी के भव में मूकता को लिये जन्म लेना पड़ा।

ज्ञान के प्रति अभिरुचि एवं आदर के साथ ग्रहण करने के लिए तत्पर रहना ही आत्मोन्नति का परिचायक है। ज्ञान जीवन विकासक दिवाकर है, उसके प्रभाव से आन्तर् जागृति सहज हो सकती है।

द्रव्य सहायक

१. श्री जवाहरलाल एण्ड सन्स, इन्दौर

२. श्री धनराज एण्ड कंपनी, इन्दौर

३. श्री चांदमल चोरड़िया
फर्म—जवाहरमल कमलचन्द, इन्दौर

४. श्री शान्तिलाल हस्तीमलजी पीपाड़ा, इन्दौर

५. श्री अशोककुमार धनराज, इन्दौर

द्रव्य सहायक

१. श्री जवाहरलाल एण्ड सन्स, इन्दौर

२. श्री धनराज एण्ड कंपनी, इन्दौर

३. श्री चांदमल चोरडिया
फर्म—जवाहरमल कमलचन्द, इन्दौर

४. श्री शान्तिलाल हस्तीमलजी पीपाड़ा, इन्दौर

५. श्री अशोककुमार धनराज, इन्दौर